आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली

ओ३म्

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

सुरेन्द्र कुमार रैली

10

नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत करने का उपक्रम

बालक और युवा ही भारत के भावी कर्णधार और निर्माता होंगे। लेकिन आज हमारी इस अमूल्य सम्पत्ति को निर्ममतापूर्वक विनष्ट किया जा रहा है। अपने इस मूलधन का विनाश हम खुली आँखों से देख रहे हैं। अमेरिकी वैश्वीकरण का घातक आक्रमण हमारे बालकों और युवाओं पर ही लगातार हो रहा है।

टी.वी., मोबाइल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट ऐसे दुर्दमनीय साधन हैं जिनके द्वारा नई पीढ़ी के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान हो सकता था, परन्तु ये साधन तो बन्दर के हाथ में पलीते की तरह पड़ गये हैं और इनके द्वारा नयी पीढ़ी को अपसंस्कृति के जाल में बड़ी सुगमता से फँसाया जा रहा है।

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा और उससे संलग्न आर्य विद्या परिषद् ने नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत, संयमी, संवेदनशील, उत्तरदायित्वों को सहर्ष स्वीकार करने वाले नागरिक बनाने के लिए एक स्तुत्य उपक्रम हाथ में लिया है। शिष्टाचार और नैतिक शिक्षा का प्रचार और प्रसार ही उनका लक्ष्य है। उन्होंने इस विषय को लक्ष्य कर 12 भागों (कक्षा 1 से 12 तक) में व्यावहारिक और प्रभावशाली साहित्य का निर्माण किया है। इन पुस्तकों में छात्रों के शिष्टाचार और नैतिक विकास को दृष्टि में रखकर सामग्री प्रस्तुत की गयी है। छात्रों में उत्तम संस्कारों और आस्तिकता पर बल दिया गया है। इन पुस्तकों में संध्या और यज्ञ के साथ सदाचार की शिक्षा देने वाली सामग्री दी गयी है।

इन 12 पुस्तकों के लेखक व आर्य विद्या परिषद् के प्रस्तोता, श्री सुरेन्द्र कुमार रैली के धर्म, समाज और देश के प्रति सात्विक चिन्तन का ही मधुरफल है। लेखक ने प्रारंभ में ही बालकों को 12 अनिवार्य और आवश्यक बातें समझाई हैं। बालक के वैयक्तिक जीवन के साथ घर, परिवार, समाज, देश और धर्म का ज्ञान प्रश्नोत्तर शैली में कराया है। नित्यप्रति के व्यावहारिक ज्ञान से बालकों को अवगत कराया है। पुस्तक में ओ३म्, ईश्वर, वेद, वैदिक संध्या, प्रार्थना, गायत्री मन्त्र, वर्ण व्यवस्था, सत्यार्थ प्रकाश, कर्मफल, अग्निहोत्र, माँस भक्षण निषेध, त्रैतवाद, गोकरुणानिधि, मद्यपान निषेध, भारतीय दर्शन आदि विषय चर्चित हैं। दूसरे भाग में महापुरुषों के प्रेरणाप्रद चरित्र पुस्तकों की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं। माता–पिता–गुरु की सेवा, अनुशासन, संयम, नमस्ते, स्वच्छता, सत्संगति, आसन प्राणायाम, एकता, श्रम, निष्ठा, शिष्टाचार, मित्रता, उत्तरदायित्व, सन्तोष, कर्तव्य परायणता, ब्रह्मचर्य, साहस, भ्रातृभाव इत्यादि सद्गुणों की शिक्षा, छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से, इस माला में अच्छी तरह चमक रही है। आर्य, आर्यावर्त, आर्य–समाज, गुरुकुल, डी.ए.वी., संस्कृत भाषा, इत्यादि विषयों का समावेश लेखक की सूझबूझ की दाद देता है। इन पुस्तकों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। पुस्तकों की भाषा प्रांजल, शैली सुबोध और हृदयग्राही है। छपाई, साज–सज्जा नयनाभिराम हैं। मूल्य अतिअल्प है। यह पुस्तकें घर–घर पहुँचने योग्य हैं।

- कै. देवरत्न आर्य
प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

मुद्रक : एस.एन. प्रिंटर्स, 1/11807, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रार्थना मंत्र

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते
प्रशिषं यस्य देवाः यस्यछायाऽमृतं
मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजु०२५।१३।

अंर्थ

हे प्रभो ! आप ही आत्मिक व शारीरिक बल देने वाले हो।
भगवान्! समस्त विद्वान् आपकी उपासना व आपकी ही आज्ञा का पालन करते हैं।
आपकी शरण अमृत है और आपकी उपेक्षा मृत्यु।
प्रभो! हम सुखस्वरूप आपकी स्तुति करते हैं।

27

जय घोष

जो बोले सो अभय—**वैदिक धर्म की जय**

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चंद्र की—**जय**

योगीराज श्री कृष्ण चंद्र की—**जय**

गुरुवर विरजानंद दंडी महाराज की—**जय**

ऋषिवर स्वामी दयानन्द की—**जय**

धर्म पर मर मिटने वालों की—**जय**

देश पर बलिदान होने वालों की—**जय**

भारत माता की—**जय**

गौ माता का—**पालन हो**

आर्यसमाज—**अमर रहे**

वेद की ज्योति—**जलती रहे**

ओ३म् का झंडा—**ऊँचा रहे**

हमारा संकल्प—**कृण्वंतो विश्वमार्यम्**

वैदिक ध्वनि—**ओ३म्**

सबको वैदिक अभिवादन—**नमस्ते जी।**

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा

(भाग-10)

सुरेन्द्र कुमार रैली
एम.ए.,एलएल.बी
प्रेरक व शिक्षाविद्
प्रस्तोता, आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली

पहला संस्करण – 2005
द्वितीय संस्करण – 2005
तृतीय संस्करण – 2006
आठवां संस्करण – 2011

मूल्य : ₹ 35.00

आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

विषय सूची

आर्यसमाज के नियम

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है– अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
8. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

✳

संगठन-सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।१।।
हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को।।
संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।२।।
प्रेम से मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।
हों विचार समान सब के चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।४।।
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख संपदा।।

भूमिका

शिक्षा से ही मानव जीवन का विकास होता है और इसके द्वारा मनुष्य के शरीर, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास होता है। विद्यालयों में विभिन्न विषयों का पठन-पाठन विद्यार्थियों को अपने जीवन में सही दिशा प्राप्त करने में सहायक होता है, परन्तु उसका आत्मिक विकास, नैतिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है, और इसी से विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास के लिए मानवीय मूल्यों की शिक्षा मिलती है। आर्यसमाज का सदैव प्रयास रहा है कि इन मानवीय मूल्यों से विद्यार्थियों को प्रारम्भ में ही अवगत करा दिया जाये। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बद्ध आर्य विद्या परिषद्, दिल्ली ने शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की पुस्तकें बच्चों को उपलब्ध कराई हैं जिनके द्वारा उनमें अच्छे संस्कार और ईश्वर में विश्वास पैदा हो, तथा संध्या-यज्ञ आदि के साथ-साथ महापुरुषों के जीवन-चरित्र, उनकी शिक्षाएँ और सदाचार की शिक्षा देने वाली कहानियां भी सम्मिलित की गई हैं।

इन पुस्तकों में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) के वर्ष 2000 के पाठ्यक्रम को भी ध्यान में रखा है जिसमें निर्देश दिया गया है कि बच्चों में सुरुचिपूर्ण संवेदनशीलता, स्वस्थ जीवन शैली, सकारात्मक सामाजिक चेतना, परिश्रम के प्रति आदर व नैतिक मूल्यों में आस्था का समावेश होना चाहिए ताकि वह दूसरों के

विचारों को बड़ी नम्रता से समझते हुआ सद्भाव एवं विवेक से अपनी कथनी और करनी में उन्हें लाएं।

हमारा प्रयास है कि हम विद्यार्थियों में सत्य, सद्भाव, सहयोग, ईमानदारी और परिश्रम करने जैसे अनेक गुणों का उनके जीवन में समावेश कर सकें।

इन 12 पुस्तकों के लेखन में जिन-जिन महानुभावों से प्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके लेखों, कहानियों, गीतों व भजनों आदि के माध्यम से परोक्ष रूप से सहयोग मिला है, विशेष रूप से डा० गंगा प्रसाद जी, डा० महेश वेदालंकार जी, डा० रघुवीर वेदालंकार जी, डा० कमल किशोर गोयनका जी, डा० सत्यभूषण वेदालंकार जी, श्री धर्मपाल शास्त्री जी एवं श्री यशपाल शास्त्री जी, मैं उन सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि विद्यार्थी, अध्यापकवृंद और अन्य लोग इस पुस्तक को उपयोगी पायेंगे और विद्यार्थियों को सुसंस्कृत बनाकर राष्ट्रनिर्माण की सतत् पुण्यप्रक्रिया में सहयोगी होंगे।

सुरेन्द्र कुमार रैली

26
भजन
समर्पण

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में।।

मेरा निश्चय बस एक यही, इक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ जगती भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में।।

जब-जब संसार का कैदी बन, दरबार में तेरे आऊँ मैं।
तब-तब हो कर्मों का निर्णय सरकार तुम्हारे हाथों में।।

या तो मैं जग से दूर रहूँ और जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ।
इस पार तुम्हारे हाथों में, उस पार तुम्हारे हाथों में।।

जब जब मानव का जन्म मिले, तब तब चरणों की पूजा करूँ।
मुझ पूजक की इक-इक रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में।।

मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तू नारायण है।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।।

इसी ध्वजा को लेकर कर में।
भर दें वेद-ज्ञान घर-घर में।
सुभग शांति फैले जगभर में।
मिटे अविद्या की अँधियारी।।५।।

विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाएँ।
सत्य अहिंसा को अपनाएँ।
जग में जीवन-ज्योति जगाएँ।
त्याग-पूर्ण हो वृत्ति हमारी।।६।।

आर्य जाति का सुयश अक्षय हो।
आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।
आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो
आर्य बनावें वसुधा सारी।।७।।

जयति ओ३म् ध्वज व्योम-बिहारी
विश्व-प्रेम प्रतिमा अति प्यारी।।

शिक्षकों से

शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा की इस पुस्तक का उद्देश्य बच्चों में सहजभाव से अच्छे संस्कार पैदा करना है। उनमें सदाचार के प्रति निष्ठा, महापुरुषों के प्रति श्रद्धा, नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूकता एवं धार्मिक रूचि आदि गुण उत्पन्न करके उन्हें शालीन, शिष्ट, अनुशासनप्रिय और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाना है। इसलिए शिक्षक इस विषय को ऐसी मधुर शैली से पढ़ाएं, जिससे बच्चों की इस ओर रूचि बढ़े और वह स्वतः बड़ी आतुरता से इस विषय के घण्टे के आने की प्रतीक्षा किया करें।

शिक्षक को पहले दिन से ही शिष्टाचार एवं नैतिक शिक्षा के विषय का परिचय कराते हुए, विद्यार्थियों को इसकी उपयोगिता से अवगत करा देना चाहिए कि शिक्षा प्राप्ति के बाद वह चाहे किसी क्षेत्र में भी कार्यरत हों, यह ज्ञान उनको उनके दैनिक जीवन में आयुभर काम आएगा।

शिक्षकों से अनुरोध है कि इस पुस्तक के पाठों को रटाने का प्रयत्न न करें। बच्चों को केवल अच्छी तरह से उदाहरण देकर बात समझा दें। परीक्षा में प्रश्न पूछने की शैली वैसी ही होगी जैसी अन्य विषयों में होती है।

सुरेन्द्र कुमार रैली

3

धर्म व नैतिकता

नैतिक शिक्षा ही क्यों ?

धर्म और नैतिकता एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। वास्तव में धर्म का अर्थ ही नैतिकता है । लेकिन वर्तमान काल में सर्वसाधारण के लिए धर्म का अर्थ किसी समुदाय विशेष से जुड़ जाता है, जिससे धर्म की परिभाषा ही बदल जाती है। आज पूरा विश्व लगभग तीन सौ अलग-अलग संप्रदायों या आज की साधारण जनमानस की भाषा में कहें तो धर्मों में बँटा हुआ है; जिन्हें हम हिंदू, ईसाई, इसलाम, बौद्ध, यहूदी, पारसी आदि नामों से पुकारते हैं और जो विभिन्न मान्यताओं और विश्वासों पर आधारित हैं। फिर इन सब की असंख्य धाराएँ एवं उपधाराएँ हैं जो अलग-अलग मठों का रूप धारण किए हुए हैं। महर्षि स्वामी दयानंद ने इन सब के लिए 'धर्म' के स्थान पर 'संप्रदाय' शब्द का प्रयोग किया था। परंतु आज भी यह सब धर्म के रूप में ही जाने और माने जाते हैं और इन की पहचान इनके द्वारा किए जाने वाले कर्मकांडो, चिन्हों, झंडों इत्यादि से होती है। अतः धर्म की परिभाषा आज गलत अर्थों में समझी और पहचानी जाती है और धर्म के आधार नैतिकता को उससे बहुत दूर कर दिया गया है।

धर्म के इस भ्रम और घालमेल से बचने के लिए ही हमने धार्मिक शिक्षा के स्थान पर नैतिक शिक्षा को विद्यालयों में पढ़ाने का विचार बनाया है, क्योंकि नैतिकता इन धार्मिक प्रपंचों से कहीं

25

ओ३म् ध्वज का गीत

जयति ओ३म् ध्वज व्योम-बिहारी।
विश्व-प्रेम-प्रतिमा अति प्यारी।।

सत्य सुधा बरसाने वाला
स्नेह-लता सरसाने वाला
सौम्य-सुमन विकसाने वाला
विश्व-विमोहक भवभयहारी।।१।।

इसके नीचे बढ़ें अभय-मन।
सत्पथ पर सब धर्मधुरी जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन।
आलोकित होवें दिशि सारी।।२।।

इससे सारे क्लेश शमन हों।
दुर्मति दानव द्वेष दमन हों।
अति उज्ज्वल अति पावन मन हों।
प्रेम तरंग बहे सुखकारी।।३।।

इसी ध्वजा के नीचे आकर।
ऊँच नीच का भेद-भुलाकर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर।
पंथाई पाखंड बिसारी।।४।।

उठो दयानन्द के सिपाहियों

उठो दयानन्द के सिपाहियों समय पुकार रहा है।
देशद्रोह का विषधर फन फैला फुँकार रहा है।।
उठो विश्व की सूनी आँखें काजल माँग रही हैं।
उठो अनेक द्रुपद सुताएँ आँचल माँग रही हैं।।
मरघट को पनघट-सा कर दो जग की प्यास बुझा दो।
भटक रहे जो मरुस्थलों में उनको राह दिखा दो।।
गले लगा लो उनको जिनको जग दुत्कार रहा है ।।१।।
तुम चाहो तो पत्थर को भी मोम बना सकते हो।
तुम चाहो तो खारे जल को सोम बना सकते हो ।।
तुम चाहो तो बंजर में भी बाग लगा सकते हो।
तुम चाहो तो पानी में भी आग लगा सकते हो।।
जातिवाद जग की नस-नस में ज़हर उतार रहा है।।२।।
याद करो क्यों भूल गए जो ऋषि को वचन दिया था।
शायद वायदा याद नहीं जो आपने कभी किया था।
वचन दिया था ओ३म् पताका कभी न झुकने देंगे।
हवन कुण्ड की अग्नि घरों में कभी न बुझने देंगे।
लहू शहीदों का गद्दारों को धिक्कार रहा है।।३।।
कब तक आँख बचा पाओगे आग बहुत फैली है।
उजली-उजली दिखने वाली हर चादर मैली है।
लेखराम का लहू पुकारे आँख ज़रा तो खोलो।
एक बार मिलकर सारे ऋषि दयानन्द की जय बोलो।
वेदज्ञान का व्यथित सूर्य तुम्हें निहार रहा है।।४।।

ऊपर है। नैतिकता सार्वभौमिक सत्य पर आधारित है और सत्य सभी नैतिकताओं का सार है, जबकि तथाकथित धर्म विश्वासों और मान्यताओं पर निर्भर करता है। एक नैतिक व्यक्ति धार्मिक हो सकता है, लेकिन एक तथाकथित धार्मिक व्यक्ति नैतिक ही होगा, यह जरूरी नहीं है।

एक सर्वेक्षण के आधार पर आज हमारे देश में ही 96.6 प्रतिशत लोग किसी न किसी धर्म में आस्था रखते हैं और केवल 3.4 प्रतिशत लोग वह हैं, जो किसी धर्म में विश्वास नहीं रखते और इनमें पागल एवं मानसिक रोगी भी सम्मिलित हैं। जब लगभग सभी लोग तथाकथित धार्मिक हैं और किसी न किसी धर्म में आस्था रखते हैं तो फिर देश की पूरी व्यवस्था में यह भ्रष्टाचार क्यों है? नौकरशाही के उच्च पदों पर बैठे प्रशासनिक अधिकारी, जो कि भारत के सबसे तीव्र और श्रेष्ठ बुद्धिमानों में से चुने हुए लोग हैं, आखिर क्यों भ्रष्टाचार में लिप्त हैं? जितने बड़े-बड़े अरबों-खरबों रूपये के घोटाले होते हैं, उनमें इनका हाथ स्पष्ट रूप से पाया जाता है। दस-बीस लाख की जनसंख्या के विश्वास से चुना हुआ राजनेता आखिर क्यों भ्रष्ट व अनैतिक व्यवहार करते हुए पकड़ा जाता है? न्यायपालिका में भी प्रत्येक कदम पर भ्रष्टाचार व्याप्त है। वहाँ भी न्याय नहीं, अगली तारीख मिलती है। इंसाफ लगभग बिकता है, जिसे खरीदनेवाला भी कंगाल हो जाता है। देश की पूरी पुलिस-व्यवस्था भी चरमरा गई है। पुलिस स्टेशन के सामने से गुजरने से ही आम आदमी को कँपकँपी होने लगती है। ऐसा माना जाता है कि पुलिस के सहयोग और आश्रय से ही अपराध बढ़ते और पनपते हैं। इसी तरह व्यापारिक गतिविधियों में भी भ्रष्टाचार का बोलबाला है। खाने-पीने की हर चीज मिलावटी बिकती है । दूध, घी, मसाले, दवाईयाँ, चाहे जिस चीज का भी

नाम लो वह बाजार में नकली और मिलावटी उपलब्ध है। व्यापार, उद्योग-धंधों में सब जगह अनैतिक मुनाफाखोरी और लूट का बाजार गर्म है। अनैतिक व्यवहार से किसी को परहेज नहीं, क्योंकि पूरे समाज में एक ऐसा वातावरण बन चुका है कि इसके बिना गुजारा नहीं। "सब चलता है" कह कर हम अपना दामन छुड़ा लेते हैं। आलम यह है कि हम सब धार्मिक हैं और 96.4 प्रतिशत धार्मिक लोगों में शामिल भी हैं और किसी न किसी रूप में ईश्वर की पूजा-अर्चना भी करते हैं और कई तरह के धार्मिक कर्मकांडों से जुड़े हुए भी हैं और ऐसा करके अपने गुनाहों को ईश्वर से माफ करवाने का झूठा भ्रम भी अपने अंदर पाले हुए हैं। कई बार तो लगता है कि तथाकथित धर्म केवल कर्मकांड ही करवाता है, क्योंकि यह विभिन्न आस्थाओं, अंधविश्वासों, चमत्कारों और अविश्वसनीय घटनाओं से लबालब भरा हुआ एक घड़ा है।

यह तथाकथित धर्म, नफरत भी फैलाता है। सन् 1947 में भारत के विभाजन के समय लगभग दस लाख लोगों की हत्या और एक करोड़ पचहत्तर लाख जनता का भयंकर विस्थापन हुआ। स्वतंत्रता के बाद भी एक स्पष्ट लिखे संविधान के होते हुए भी धर्म के नाम पर आतंकवाद तथा धार्मिक उन्माद के चलते पंजाब में लगभग तेईस हजार हत्या और विस्थापन, कश्मीर में लगभग उनतीस हजार हत्याएँ और विस्थापन, दिल्ली में ही लगभग चार हजार सिखों की हत्याएँ और विस्थापन, बाबरी मस्जिद ध्वंस के समय लगभग छह हजार लोगों की हत्याएँ और विस्थापन, गोधराकांड और उसके बाद गुजरात में नरसंहार, यह सब हमें कहाँ ले जा रहा है ? क्या यह तथाकथित धर्म का कुरूप और भौंडा चेहरा नहीं है ? इसीलिए हम नैतिक शिक्षा की बात करते हैं, क्योंकि तथाकथित धार्मिकता इसे विनाश की ओर ले

क्रांतिवीर पं. रामप्रसाद बिस्मिल का गोरखपुर जेल से पत्र

गोरखपुर की जेल में बैठा माँ को लिखता परवाना।
देश धर्म का दीवाना ।।
जन्मदात्री जननी मेरी, ले अन्तिम प्रणाम मेरा।
जन्म जन्म तक ना भूलूँगा, माताजी अहसान तेरा।
सेवा ना कर सका आपकी, यहीं मेरा है पछताना ।।१।।

मेरी मौत का मेरी माँ से, जब सन्देश सुनाए।
मेरी याद में तेरी आँख से, आँसू ना बह जाए।।
वतन पे मरने वालों की माँ को, ना चाहिए घबराना ।।२।।

सब माताओं की माता है, मेरी भारत माता।
उसकी आज़ादी की भेट में, चढ़ने को मैं जाता ।।
जिसको प्यार नहीं माता से, उसका अच्छा मर जाना ।।३।।

होगा वतन आजाद एक दिन ऐसा भी आएगा।
स्वर्ण अक्षरों में माँ तेरा, नाम लिखा जाएगा
खेमसिंह भी गाएगा, बना–बना तेरा गाना।।४।।

आर्यवीर गान

जो दुःखियों की सेवा में तन मन लगाए।
जो बरबाद उजड़े घरों को बसाए।
जो औरों को सुख देके खुद दुःख उठाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।१।।
जो अन्याय के आगे झुकना न जाने ।
जो तूफान आँधी में रुकना न जाने ।
मुसीबत से डर कर के छिपना न जाने ।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।२।।
जो मृत्यु का भय अपने मन में न लाए।
धधकती हुई ज्वाला में कूद जाए।
चकित कर दे जग को वह करके दिखाए।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।३।।
उसे करके छोड़े जो दिल में ठनी हो।
निडर हो इरादे का धुन का धनी हों
धर्म रक्षा में जिसकी छाती तनी हो।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।४।।
जो मैदान में लाजपत बन के निकले।
भगतसिंह सुखदेव दत्त बन के निकले।
जो शेरों पे चढ़ के भरत बनके निकले।
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम।।५।।
जो ब्रह्मचर्य से अपना बल थाम रखे।
जो पुरुषार्थ परमार्थ से काम रखे।
जो रोशन दयानन्द का नाम रखें
समझ लो वही आर्यवीर हो तुम ।।६।।

जा रही है इसलिए अब नैतिकता ही दश को बचा सकती है। हमारा यह भी प्रयास रहेगा कि हम सत्य सनातन वैदिक-धर्म का परिचय भी विद्यार्थियों को दें। जिससे वह अपने विवेक द्वारा असत्य, ढोंग, अंधविश्वास आदि से ऊपर उठकर जीवन को सही अर्थों में समझकर सच्चाई और न्याय के रास्ते पर चल सकें।

नैतिकता सार्वभौमिक सत्यों पर आधारित है और आश्चर्य है कि यह सार्वभौमिक सत्य सब को पता भी है। हम सबको मालूम है कि गलत क्या है और ठीक क्या हैं ? सत्य क्या है ? और असत्य क्या है ? बस ! इस बात का एहसास करवाना ही नैतिकता का पाठ पढ़ाना है। ईश्वर सही और गलत का ज्ञान प्रत्येक जीव को जन्म से ही देता है। उसके शरीर में वह अंतरात्मा के साथ उपस्थित रहता है। जब कोई व्यक्ति गलत काम करता है तो उसके शरीर के अंदर कुछ घटना घटती है। भले ही बाहरी रूप से उसे कुछ न दिखाई देता हो, लेकिन अंदर से कोई आवाज देता है कि तुम गलत कर रहे हो। तब वह अंदर की आँखें बंद कर देता है और बाहर की आँखों से अपने चारों ओर देखता है कि 'कहीं कोई देख तो नहीं रहा' जैसे ही भय, शंका और लज्जा के भाव आप के अंदर उठे, तो आपको यह समझ लेना चाहिए कि आप गलत काम कर रहे हैं और यदि आप तुरंत उस काम से अलग हो जाते तो आपकी नैतिकता की विजय होती है और यदि मन में इन भावों के रहते हुए भी आप वह गलत काम कर डालते तो यह अनैतिकता है, जो आपको तो रसातल की ओर ले ही जाती है, लेकिन उसके साथ-साथ समाज में एक बुराई और बढ़कर सामाजिक वातावरण को और भी प्रदूषित करती है। दूसरी ओर यदि आप अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनकर उस कार्य को करने से बच जाते तो हैं आप के साथ-साथ समाज व देश भी बच

जाता है। इसी प्रकार यदि हम कोई अच्छा कार्य करते हैं तो हमारी अंतरात्मा में भय, शंका, लज्जा इत्यादि की ग्लानि नहीं, अपितु प्रसन्नता का भाव पैदा होता है और हम चाहते हैं कि हमारे इस कार्य को सभी देखें। जब ऐसा हो तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि यह नैतिक कार्य है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति किसी अनजान बूढ़े को सहारा देकर सड़क पार करवाता है तो उसके अंदर से खुशी की एक लहर पैदा होती है और वह अपने चारों ओर देखता है और चाहता है कि सब लोग इसको देखें, क्योंकि उस समय वह नैतिकता की सुगंध फैला रहा होता है। ऐसा करने से उसका कल्याण तो होता ही है, उसके साथ-साथ समाज और देश में भी एक सुखमय वातावरण बनता है।

यह अंतरात्मा की आवाज मनुष्य को ही नहीं, पशुओं को भी आती है। उदाहरण के लिए आप अपने मोहल्ले के किसी कुत्ते को ही लें, जिसको कभी कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया। यदि आप उसे रोटी खिलाएँ और दूध पिलाएँ तो वह वहीं बैठ कर खाएगा और आभार प्रकट करने हेतु अपनी पूँछ भी हिलाएगा। वही कुत्ता, यदि आपकी रसोई में आपकी आँखें बचाकर घुस जाता है और वहाँ से रोटी चुराता है तो वह वहाँ बैठकर नहीं खाएगा, अपितु बाहर की ओर भागेगा और उसकी पूँछ उसकी पिछली दोनों टाँगों के बीच में होगी, क्योंकि उसकी अंतरात्मा उसको बता रही है कि वह एक गलत काम कर रहा है।

नैतिक शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को प्रकृति, जीव और ईश्वर की महत्ता को समझाना, उनकी जिज्ञासाओं को तर्कों और व्यावहारिकता के आधार पर शांत करना, उनकी बुराइयों को दूर करके उन्हें एक अच्छा, सच्चा और श्रेष्ठ व्यक्ति बनाना ही नैतिक शिक्षा का मूल उद्देश्य है। मैंने नैतिक शिक्षा के कई प्रयोग विभिन्न

आर्यवीरों का गीत

आर्यवीर दल रहा रहेगा प्राण आर्यों का ।
इससे ही होना है नव निर्माण आर्यों का ।।
गुरुवर दयानन्द का इससे गहरा नाता है।
आर्यवीर दल पुनः जागरण शंख बजाता है।।
लेखराम का लहू धमनियों में लहराता है।
सावधान शिशुपालो! चक्र सुदर्शन आता है। ।
सेना फिर से सजे यही कल्याण आर्यों का ।।१।।
आर्यवीर दल राख नहीं जलता अंगारा है।
आर्यवीर दल दयानन्द की आँख का तारा है।।
आर्यवीर दल देशभक्त वीरों की टोली है।
डायर की छाती में ऊधम सिंह की गोली है।।
न्यायालय में पक्का रहा प्रमाण आर्यों का ।।२।।
आर्यवीर दल पेचीदा प्रश्नों का उत्तर है।
आर्यवीर दल जहाँ वहाँ हर प्रश्न निरुत्तर है।।
आर्यवीर दल संघर्षों की आग में जलना है।
आर्यवीर दल कलयुग में सतयुग का सपना है।।
आर्यवीर दल संजीवन निष्प्राण आर्यों का ।।३।।
आर्यवीर दल सिद्धि नहीं है सिर्फ साधना है।
आर्यवीर दल सुप्त मनुज की दबी भावना है।।
आर्यवीर दल एक सत्य है नहीं कल्पना है।
आर्यवीर दल क्रान्ति सिन्धु है राष्ट्र वन्दना है।।
गीत 'मनीषी' तम में अग्निबाण आर्यों का ।।४।।

हिन्दुओं की रक्षा व सेवा हेतु पश्चिमी पंजाब के रावलपिण्डी, हजारा, जेहलम जिलों में लोगों को जबरदस्त सुरक्षा प्रदान की। पूर्वी बंगाल के नोआखली जिले में हिन्दुओं की निर्मम हत्याओं को रोकने के लिए आर्यसमाज की शिरोमणी संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने 200 आर्यवीरों को भेजा और अपने प्रधान संचालक श्री ओम प्रकाश त्यागी के नेतृत्व में अपनी जान की परवाह न करते हुए इन आर्यवीरों ने हजारों लोगों की जान बचाई। आर्यवीरों ने न केवल शरणार्थी शिविर लगाए बल्कि उन शिविरों को रात-दिन सुरक्षा प्रदान की।

स्वतन्त्र भारत में जब-जब देश पर प्राकृतिक आपदा आई, आर्यवीरों ने सदैव राहत कार्यों में बढ़-चढ़कर भाग लिया। हाल ही में सन् 2004 में सुनामी लहरों ने जब दक्षिण भारत में कहर बरसाया तो आर्यवीर दल ने 48 घन्टों के भीतर ही पहला राहत शिविर लगा दिया जो पूरे भारत में सर्वप्रथम था और लोगों की सेवा में आर्यवीर जुट गए। इससे पूर्व सन् 2002 में जब गुजरात में भयंकर भुकम्प आया था तो आर्यवीर दल ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए कई लोगों की जानें बचाई। इससे पूर्व महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तराखंड में आए भूकंम्पों में भी आर्यवीरों ने अपने आर्यत्व का पूरा परिचय देते हुए, तन-मन-धन से तबाह हुए लोगों की सेवा की ।

आर्यवीर दल का पूरा इतिहास त्याग, बलिदान, देशभक्ति, सेवा और शौर्यगाथा से परिपूर्ण है। जिन्होंने धर्म एवं राष्ट्ररक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया, इन परिचित एवं अनाम शहीदों को शत-शत प्रणाम।

तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा ?
अपना खून गर्म करने को, नाम तुम्हारा लेगा।

विद्यालयों में बच्चों पर किए हैं, जो अत्यंत सफल भी हुए हैं। उन प्रयोगों में से एक का वर्णन मैं यहाँ करना चाहूँगा, जो इस प्रकार है :–

आर्यसमाज प्रीत विहार, दिल्ली में लगभग दो सौ अत्यंत निर्धन व असहाय बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था है और अधिकांश उन परिवारों के बच्चों को प्रवेश दिया जाता है, जो निर्धनों में भी सबसे निर्धन हैं और जिनके परिवारों में माता-पिता सहित कोई पढ़ा-लिखा नहीं है। इन बच्चों को किताबें, कापियाँ, पठन सामग्री, यूनिफॉर्म, जूते आदि सब कुछ निःशुल्क दिए जाते हैं और प्रतिदिन खाने-पीने को भी कुछ न कुछ दिया जाता है। इस विद्यालय का सोमवार को साप्ताहिक अवकाश होता है और रविवार को बच्चे बिना बस्ते के आते हैं। यह सभी बच्चे व इनके शिक्षक रविवार को आर्यसमाज के सत्संग में भाग भी लेते हैं। सत्संग के उपरांत प्रतिदिन प्रायः दो घंटे तक इनको नैतिक शिक्षा दी जाती है। आर्यसमाज का प्रधान होने के नाते इस पूरी व्यवस्था में मेरी भागीदारी रहती है और नैतिक शिक्षा देने में मैं शिक्षकों का सहयोग भी करता हूँ। इस वर्ष नए सत्र के शुरू होने के पश्चात् शिक्षकों ने मुझसे शिकायत की कि इनमें से बहुत से बच्चों को चोरी करने की आदत है और एक दूसरे का सामान अकसर चोरी होता रहता है। मैंने बच्चों को एक बहुत प्रचलित छोटी-सी कहानी सुनाई कि एक विद्यालय के गुरुजी ने अपने तीन शिष्यों को एक-एक सेब देकर कहा कि वह यह सेब किसी ऐसी जगह खाकर आएँ जहाँ उन्हें कोई देख न रहा हो। एक शिष्य ने अपने कमरे की खिड़की और दरवाजा बंद किया और सेब खाकर तुरंत आ गया। दूसरा शिष्य दूर एक निर्जन स्थान पर गया और झाड़ियों में छिप कर सेब खाकर थोड़ी देर में आ गया। लेकिन तीसरा

शिष्य बिना खाए अपने सेब को लेकर वापिस आ गया और गुरुजी से बोला कि मुझे ऐसा कोई स्थान नहीं मिला, जहाँ कोई नहीं देखता, क्योंकि ईश्वर तो सब जगह देखता है, अतः मैं उसके देखे बिना कहीं भी सेब नहीं खा सका। गुरुजी उसकी बात से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शिष्यों को बताया कि ईश्वर हर जगह विद्यमान् है और यदि हम कोई भी अच्छा या बुरा काम करते हैं तो वह हमें निरंतर देखता रहता है। इसलिए हमें कभी कोई बुरा काम नहीं करना चाहिए। इस कहानी के संदेश से ही मैंने उन्हें समझाया कि जब हम कोई गलत काम करते हैं तो हमारे शरीर के अंदर तीन बार घंटी बजती है। जैसे ही हम अपने साथी के बस्ते से उसकी पेंसिल या कुछ और चुराने लगते हैं तो हमारे अंदर पहली घंटी बजती है कि कोई देख तो नहीं रहा तब चोरी करने से पहले हम अच्छी तरह चारों ओर निगाह घुमाते हैं और पूरी तरह जाँच-पड़ताल से संतुष्ट होकर जैसे ही हमारा हाथ साथी के बस्ते तक कुछ चुराने के लिए पहुँचता है तो यदि कहीं दूर पर भी कुछ खटक होती है तो एकदम हम घबरा जाते हैं और अंदर से शंका की दूसरी घंटी बजती है कि कहीं कोई आ तो नहीं गया ? जब हम आश्वस्त हो जाते हैं कि कहीं कोई नहीं आया और फुर्ती से चोरी करके वस्तु को अपनी जेब में डालते हैं और अनायास हमारा कोई साथी भागता हुआ सामने आ जाता है तो हमारे अंदर की तीसरी घंटी बजती है कि कहीं इसने देख तो नहीं लिया और हम अपने साथी से आँख तक नहीं मिला पाते। जब ऐसी स्थिति आए तो बच्चों तुम्हें समझ लेना चाहिए कि तुमने कोई गलत काम किया है, क्योंकि किसी और ने देखा हो या ना देखा हो, तुम्हारी अंतरात्मा और ईश्वर ने अच्छी तरह से देख लिया है और ईश्वर के नियमों के आधार पर वह तुम्हें दंड अवश्य

इसी कुचक्र के शिकार हुए ।

धर्मान्ध लोगों द्वारा अपने नेताओं के बलिदान किए जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए सन् 1927 ई. को महात्मा हंसराज की अध्यक्षता में दिल्ली में एक विराट् महा सम्मेलन हुआ जिसके परिणाम स्वरूप 26 जनवरी, 1929 ई० को आर्य रक्षा समिति के सुदृढ़ अंग के रूप में आर्यवीर दल की स्थापना की गई।

आर्यवीर दल की शाखा प्रत्येक प्रांत, नगर और आर्यसमाज में स्थापित की जाने लगी। इसके नियमित संचालन के लिए बलिष्ठ आर्यवीरों को शिविरों में प्रशिक्षित किया जाने लगा और इस प्रकार सर्वत्र क्षात्र धर्म का प्रचार–प्रसार होने से आर्य नेताओं पर होने वाले आक्रमण रूक गए। सिंहों की दहाड़ सुनकर गीदड़ माँदों में जा छिपे। आर्यजनों के भव्य सम्मेलन, उत्सव, मेले, शोभायात्रा आदि अब निर्विघ्न संपन्न होने लगे। आज भी स्थानीय आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव से लेकर आर्य जगत के बड़े-बड़े महासम्मेलनों और आयोजनों की व्यवस्था और सुरक्षा आर्यवीर दल के आर्यवीरों द्वारा संभाली जाती है।

आर्य युवकों ने आर्यवीर दल की कमान संभाली तो आर्य युवतियां पीछे कैसे रह सकती थी, उन्होंने भी आर्य वीरांगना दल का गठन करके आर्यवीर दल के सिद्धांतों और कार्यकलापों के अनुरूप मातृशक्ति के नेतृत्व का दायित्व संभाला।

आर्यवीरों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया और 1942 के "भारत छोड़ो-करो या मरो" के आन्दोलन के संग्राम में कूद पड़े। आर्यवीर दल ने हैदराबाद रियासत को भारत में विलय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत विभाजन के समय हुए हिन्दुओं के नरसंहार को रोकने और

24

आर्यवीर दल एवं आर्यवीरांगना दल

प्रत्येक जीवंत संगठन की युवा इकाइयाँ होती हैं जिनमें मंजे हुए कार्यकर्त्ता तैयार किए जाते हैं ताकि भविष्य में वह अपने संगठन का कार्य संभाल सकें और उसे, निरंतर आगे की ओर बढ़ाते रहें।

इसी आशय को लेकर आर्यसमाज में युवकों के लिए आर्यवीर दल और युवतियों के लिए आर्यवीरांगना दल की स्थापना की गई जो न केवल इस संगठन की जान है अपितु अज्ञान, अन्याय और अभाव का मुकाबला करने के लिए कृतसंकल्प है। इनमें राष्ट्रीयता कूट–2 कर भरी हुई है और जाति-पाँति, छुआछूत के ज़हर से अछूती, मानव मात्र की सेवा करने का आदर्श लेकर ''कृण्वन्तो विश्वमार्यम''–'सारे संसार को श्रेष्ठ बनाओ' ही जिसका उद्घोष है और देव दयानन्द के सपनों का आर्यराष्ट्र निर्माण का अरमान है।

आर्यवीर दल की स्थापना

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी अभियान से पौराणिक हिन्दू, मुसलमान और अन्य मतावलम्बियों में खलबली मच गई और वह इस क्रांति की ज्वाला को बुझाने के लिए नित नए षडयंत्र रचने लगे। स्वामीजी के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायी और अधिक उत्साह से पाखण्ड और अधर्म को मिटाने में जुट गए। उनके तर्कों के तीरों के उत्तर तो इन विरोधियों के पास नहीं थे, लेकिन उन्होंने इन महापुरुषों पर प्राणघाती आक्रमण शुरू कर दिए और अमर शहीद वीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल

देगा। उससे तुम बच नहीं सकते। अतः तुम्हारी आत्मा तुम्हें जब बुरा काम करने से रोकती है और तुम्हारे अंदर पहली घंटी बजती है तो तभी तुम्हें सचेत हो जाना चाहिए और चोरी का विचार ही अपने मन से निकाल देना चाहिए। बच्चों पर इसका इतना असर हुआ कि उस दिन के बाद से वहाँ चोरी बिलकुल बंद हो गई और आज तक उनकी कभी कोई शिकायत नहीं आई। मेरे इस प्रयोग ने जहाँ मुझे बल दिया, वहाँ इससे शिक्षकों के बीच भी यह संदेश गया कि यदि हम सब मिल कर नैतिकता के इन आधारभूत नियमों का प्रचार और प्रसार करेंगे तो हम बेहतर बच्चे और उन बच्चों के माध्यम से बेहतर समाज और फिर बेहतर राष्ट्र का निर्माण करते हुए आर्यसमाज के अंतिम लक्ष्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' अर्थात् पूरे विश्व को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाएँ के सपने को साकार कर सकें।

4

धर्म

किसी भी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को उसका धर्म कहते हैं। जैसे, अग्नि का धर्म उसकी गर्मी और तेज है। गर्मी और तेज के बिना अग्नि की कोई सत्ता नहीं।

धर्म की परिभाषा के अनुसार मनुष्य का स्वाभाविक गुण मानवता है। यही उसका धर्म है। इसके आचरण के लिए उसे अच्छे कर्म करने चाहिए और अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।

महर्षि मनु के अनुसार धर्म के दस लक्षण निम्नलिखित हैं :—

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।

(1) **धृति :** कठिनाईयों से न घबराना।

(2) **क्षमा :** शक्ति होते हुए भी दूसरों को माफ करना।

(3) **दम :** मन को वश में करना।

(4) **अस्तेय :** चोरी न करना। मन, वाणी और कर्म से किसी के भी धन का लालच न करना।

(5) **शौच :** शरीर, मन एवं बुद्धि को पवित्र रखना।

देने में प्रयत्न कर चुके और कोइ इनके बनाए पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना, कई अपने बाग-बगीचों में उनका रहना भी स्वीकार नहीं करते। तथापि धन्य हैं स्वामी जी जिन्होंने इतने पर भी सनातन वेदोक्त आर्योन्नति के यत्नों से विरक्त न होकर परोपकार से अपना जीवन सफल किया।"

यदि स्वामी जी में पक्षपातरहित, सत्यता, विद्धत्ता, शान्ति, निन्दास्तुति में हर्ष-शोकरहितता न होती और विमलविद्या प्रगल्भता, धार्मिकता, आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे-ऐसे सनातन, वेदोक्त सत्यधर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते। आर्यों को बिना आसमानी किताब वाले बुतपरस्त, नालायक इनके मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेप से जैन, मुसलमान और ईसाई, लाखों करोड़ों को बहका के अपने मत में मिलाते थे और कहते थे आओ हमसे वाद-विवाद करो। किन्तु स्वामी जी के सम्मुख वेदशास्त्र, आर्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा वाद करना भी असह्य समझते हैं।

भाटों के प्रपिता यह बन रहे हैं। क्या ही शोक की बात है कि 'इतिहास तिमिरनाशक' के तीसरे खण्ड में कितने बड़े वेद आदि शास्त्रों और आर्य तथा आर्यावर्त्त देश की निन्दा लिखकर छपवाई है।"

इसके आगे महर्षि दयानन्द के विषय में इस प्रकार लिखा है – "कई एक बड़े-बड़े सेठ, साहूकार, रईस, बुद्धिमान्, पण्डित, सज्जन लोग, राजे-महाराजे स्वामीजी को अत्यन्त मानते, श्रद्धा करते और उपरदेश को भी स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपता लोभ से किसी का भय, किसी की खुशामद, किसी से छल वा धन हरण करने का उपय या किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते मैंने इनको कभी नहीं देखा।"

"काशी में संवत् 1926 वें वर्ष में उन पर हमला किया। संखिया मिलाकर पान-बीडा दिया। बुरी-बुरी निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये। कई जगह मारने को आये। ऊपर पत्थर और धूल फेंकी। जिला बुलन्दशहर कर्णवास के समीप जहाँ स्वामी जी रहते थे वहीं किसी ने रात के 1 बजे के समय 10 आदमी तलवार और लट्ठ लेकर मारने को भेजे। कई नास्तिक कहते, कई क्रिश्चिन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते। कई उनका मुख देखन में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते । कोई काल का अवतार, कोई कल मरते आज ही मर जाय तो अच्छा, कई मजिस्ट्रेटों के कान भर व्याख्यान बन्द करा

(6) **इंद्रिय-निग्रह :** इंद्रियों अर्थात् आँख, वाणी, कान, नाक और त्वचा को अपने वश में रखना और वासनाओं से बचना।

(7) **धी :** बुद्धिमान् बनना अर्थात् प्रत्येक काम को सोच-विचार कर करना और अच्छी बुद्धि धारण करना।

(8) **विद्या :** ज्ञान ग्रहण करना।

(9) **सत्य :** सच बोलना, सत्य का आचरण करना।

(10) **अक्रोध :** क्रोध न करना। क्रोध को वश में करना।

इन दस नियमों का पालन करना ही धर्म है। यही धर्म के दस लक्षण हैं।

इन लक्षणों में किसी विशेष ग्रंथ को पढ़ने या न पढ़ने की बात नहीं कही गई । ईश्वर को मानने या न मानने की शर्त भी इसमें नहीं लगाई गई । किसी अवतार, पीर, पैगंबर को भी नहीं बताया गया। कोई व्यक्ति किसी भी संस्कृति या मज़हब को मानने वाला हो, यदि उसमें ये बातें हैं तो वह धार्मिक है, और यदि ये बातें उसमें नहीं हैं, तो वह धार्मिक नहीं हैं। ये गुण धर्म की पहचान हैं। उपर्युक्त दस लक्षणों या पहचानों का संबंध व्यक्ति तथा समाज, इकाई और समूह दोनों के साथ है। जिस समाज के सदस्यों में या जिस समूह की इकाइयों में ये गुण होंगे, वह समाज, वह राष्ट्र, वह समूह धार्मिक और सभ्य कहा जाएगा, वह इकाई या व्यक्ति तो धार्मिक होगा ही।

ऋषियों ने धर्म की एक और परिभाषा की है : **'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः'**। अर्थात् धर्म वह है, जिस पर आचरण करने से अपनी और सबकी उन्नति हो और निःश्रेयस अर्थात् आत्मकल्याण भी हो।

उदाहरण के लिए, एक किसान अपने खेत में उत्तम अन्न पैदा करता है, वह स्वयं खुशहाल होने के साथ-साथ समाज को भी स्वस्थ और समृद्ध बनाता है, जबकि वहीं पर दूसरा किसान तंबाकू की खेती करके स्वयं भले ही मालामाल हो जाए, पर वह समाज के स्वास्थ्य की हानि करता है। इसी प्रकार अच्छी एवं शुद्ध वस्तुओं का व्यापारी अपने साथ-साथ समाज का भी हित करता है, जबकि मिलावटी तथा हानिकारक वस्तुओं का व्यापारी पैसे की दृष्टि से स्वयं भले ही पैसा अधिक कमा ले, किंतु वह समाज का हत्यारा है। वास्तव में वह अपनी भी हानि करता है और सबकी आँखों से भी गिर जाता है। अतः हमें (मनुष्य को) कर्म ऐसा करना चाहिए, जिसमें, अपने साथ-साथ दूसरों का भी हित हो और आत्मा भी मैली न हो।

कभी-कभी धर्म और अधर्म के समझने में विद्वान् भी भटक जाते हैं। अतः 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' जो हमारे प्रतिकूल हो वह व्यवहार हमें दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।

धर्म मानव मात्र के लिए होता है। यह ईश्वर का बताया हुआ मार्ग है। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा बनाया नहीं होता। इसके विपरीत मत व्यक्तियों द्वारा चलाई गई विचारधाराएँ होती हैं।

वैदिक धर्म किसी विशेष व्यक्ति का बनाया या चलाया हुआ नहीं है। यह सृष्टि के आरंभ से है। वेद पर आधारित यह धर्म मानवता का संदेश देता है, अतः यह धर्म है। परंतु दूसरे अन्य धर्म किसी व्यक्ति विशेष द्वारा चलाए गए हैं। धर्म चलाते समय उन्होंने अपने आपको ईश्वर का दूत बताया या ईश्वर के पुत्र होने

(3) मनुस्मृति में लिखा है कि आर्यवर्त में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति समस्त पृथिवी पर अपने चरित्र एवं व्यवहार की शिक्षा फैलाएँ। इससे भी यही सिद्ध होता है आर्य लोग भारत से ही विदेशों में गये।

(4) विदेशों में जाकर यहाँ स्थायी रूप से बसने पर भी जाने वाले व्यक्ति अपने पूर्व देश को स्मरण रखते हैं वहाँ की संस्कृति को अपनाए रखते हैं – अपने प्राचीन देश तथा पूर्वजों का नाम बड़े गौरव से लेते हैं। यथा-भारत ।

(5) दूसरे देशों का नामकरण पहले हुआ है, उसके पश्चात् उस-उस देश के नाम पर उस देश के निवासियों का नामकरण किया जाता है। यथा अमेरिका तथा वहाँ पर बसने वाले अमेरिकन, रूस, जापान तथा वहाँ पर बसने वाली रूसी, जापानी इत्यादि। इसके विपरीत भारत का प्राचीन नाम यहाँ के बसने वालों का नाम है। आर्यावर्त्त का अर्थ है आर्यों से घिरा हुआ। इससे स्पष्ट है कि आर्य लोग जहाँ भी पहले–पहल बसे उसी स्थान का नाम आर्यावर्त्त प्रसिद्ध हो गया। भारत का ही प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है।

(6) वस्तुतः राजा जी की उक्त पुस्तक भारत के प्राचीन गौरव तथा भारतीय संस्कृति की विरोधी थी। इसके विषय में अनुभ्रमोच्छेन में लिखा है– "अंग्रेज के पैर पकड़ने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्यन्त राजाजी ऐसी चाल-चलन से चले हैं कि जिससे इस देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादि शास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इंगित से प्रशंसा और अंग्रेजों की प्रशंसा में जानो जब

लोगों को तो राजा जी भाट ठहराते हैं। विदित होता है कि आर्यावर्तीय धार्मिक आप्त-पुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति से ही राजा जी प्रसन्न होते हैं।

(2) उक्त इतिहास के पृ० 15 पर राजा जी लिखते हैं कि आर्य लोग पारस देश से भारत में आये थे। इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है कि क्या यह बात असम्भव है कि आर्यावर्त्त से ही कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों ? क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई माद्री पाण्डु राजा से विवाही थी उसी समय वा आगे-पीछे वहाँ जा'जा रहने का सम्भव हो सकता है। और क्या जो पारस देश से आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ?

वस्तुतः विदेशी लेखकों ने जानबूझकर इस मिथ्या धारणा को जन्म दिया है कि आर्य लोग भारत में बाहर से आये थें उन्होंने ही यहाँ के जंगल एवं पर्वतों में रहने वाले पिछड़े अुए लोगों को आदिवासी नाम दिया जो अब तक चला आ रहा है। वस्तुतः आर्य लोगी ही इस देश के आदिवासी हैं वे कहीं बाहर से आकर यहाँ पर नहीं बसे। इसमें अकाट्य तर्क ये हैं –

(1) आर्यों के अथवा भारत वर्ष के किसी भी ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि आर्य लोग बाहर से आये थे।

(2) किसी भी प्राचीन ग्रन्थ भारत में भिन्न किसी दूसरे देश की सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता।

का भी दावा किया, ताकि लोग उनका अनुसरण करें । उदाहरण के लिए इसलाम धर्म मुहम्मद साहिब द्वारा तथा ईसाई धर्म ईसा मसीह द्वारा और बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध द्वारा उनके विचारों के आधार पर आरंभ किया गया था। क्योंकि हर अनुयायी को उस धर्म के चलाने वाले पर विश्वास लाना आवश्यक है। सो, ये सभी धर्म नहीं, मत हैं।

ये सब धर्म वैज्ञानिक भी नहीं हैं, जबकि धर्म और विज्ञान का आपस में अभिन्न संबंध है। जहाँ धर्म है, वहाँ विज्ञान है। सृष्टि के प्राकृतिक नियमों को विज्ञान कहते हैं। इन नियमों के अनुरूप ही जो कार्य मानव करता है, उसे धर्म कहते हैं। सो दोनों का एक दूसरे से गहरा संबंध है। जो मत विज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं, वे धर्म नहीं हैं।

5

स्वस्थ शरीर के तीन स्तंभ

स्वास्थ्य को स्थिर रखने के लिये आयुर्वेद शास्त्र में तीन सावधानियों की ओर ध्यान दिलाया गया है। ये हैं – भोजन, निद्रा और ब्रह्मचर्य। आयुर्वेद शास्त्र ने इन्हें शरीर के तीन स्तंभ कहा है।

इस शरीर को योगशास्त्र ने अन्नमय कोष कहा है। अतः अन्न के बिना, भोजन के बिना यह शरीर चल ही नहीं सकता। इस अन्नमय कोष के भीतर प्राणमय, उससे आगे मनोमय, उससे आगे विज्ञानमय और उससे भी आगे वह आनंदमय कोष है जहाँ परमात्मा के दर्शन होते हैं। इसलिए शरीर को धर्म का पहला साधन कहा गया है। यह मानव शरीर इस अन्नमय कोष का मूल है। यह अन्न से बनता है, अतः इसे ठीक रखने के लिए इसे ऐसा भोजन देना चाहिए, जिससे वह स्वस्थ रहे। इसका निर्णय प्रकृति के नियम और शरीर के स्वभाव के अनुसार होना चाहिए। जैसे कई लोग वात प्रकृति के होते हैं उन्हें बादी बहुत होती है, उनके लिए करेले बहुत उपयुक्त हैं। कई लोग पित्त प्रकृति के होते हैं उनमें गर्मी बहुत होती है, इसलिए यदि वे करेले खाएँ तो उन्हें बवासीर फूटने लगती है। अतः हमें अपनी प्रकृति के अनुसार ठीक

(3) निवेदन में राजा जी का प्रश्न है कि **'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या'** (पू० मी० 1–2–32) तथा **'शेषे ब्राह्मण शब्दः'** (पू०मी० 2–1–33) पूर्वमीमांसा के इन दोनों सूत्रों के अनुसार ब्राह्मणग्रन्थों की भी वेद संज्ञा सिद्ध होती है। इसका उत्तर यह है कि इन सूत्रों के अनुसार तो किसी भी प्रकार ब्राह्मणग्रन्थों की वेद संज्ञा सिद्ध नहीं हो रही किन्तु पूर्वमीमांसा के भाष्यकार शबर स्वामी ने इन सूत्रों के भाष्य में लिखा है – **'अथ किं लक्षणं ब्राह्मणम् ? मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः'** । ये विचार शबर स्वामी के अपने हैं। इनको मीमांसा दर्शनकार जैमिनि मुनि के वचन मानकर ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा सिद्ध नहीं की जा सकती । यहाँ पर दूसरा दोष यह भी है कि लक्षण तो ब्राह्मण का पूछा था, उत्तर वेद की संज्ञा का दिया है। अतः असम्बद्ध उत्तर होने के कारण यह प्रामाणिक नहीं है।

(4) इस शंका– समाधान के अतिरिक्त अनुभ्रमोच्छेदन में राजा शिवप्रसाद जी द्वारा लिखित 'इतिहास तिमिरनाशक' नामक पुस्तक की अशुद्धियों तथा प्राचीन संस्कृति विरोधी बातों का उल्लेख किया गया है। यथा –

(1) अपने ग्रन्थ के पृ० 3 पर व्यास आदि प्राचीन कवियों के विषय में राजा जी ने लिखा है 'आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रहना सहज है, निदान में भाट इसी में बड़ाई समझते हैं ? इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है – क्या ही शोक की बात है कि मनु, वाल्मीकि, व्यास प्रभृति ऋषि, महर्षि, महात्मा महाशय, ब्राह्मण

23

महर्षि दयानन्द रचित लघु ग्रंथ

अनुभ्रमोच्छेदन

महा लघुग्रन्थ भ्रमोच्छेदन को आधार बना़कर ही लिखा गया है। इसमें भ्रमोच्छेदन के तथ्यों का ही कुछ विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। उनके सारमात्र को यहाँ दिया जा रहा है –

(1) अपने निवेदन में राजा जी स्वामी जी से पूछते हैं कि पाणिनि आदि ऋषियों ने ऐसा कहाँ लिखा है कि मन्त्रसंहिता ही वेद हैं, ब्राह्मण वेद नहीं हैं ? इसका उत्तर यह है कि पतञ्जलि मुनि ने महाभाष्य से वैदकि शब्दों में **शन्नो देवीरभिष्टये** (अथर्ववेद) **इषे त्वोर्जेत्वा** (यजुर्वेद) **अग्निमीडे** (ऋग्वेद) तथा **अग्न आयाहि वीतये** (सामवेद) इस प्रकार चारों वेदों से एक-एक वेद का एक-एक मन्त्र उदृघृत किया है। यदि ब्राह्मणग्रन्थ भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में इसका उदाहरण भी पतञ्जलि मुन देते ? इससे सपष्ट है कि पतञ्जलि मुनि ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं मानते।

(2) **छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि** (अष्टा० 4–2–66)

इस सूत्र में पाणिनि मुनि ने छन्द तथा ब्राह्मण दोनों पदों का पृथक्-पृथक् ग्रहण किया है। छन्द का अर्थ वेद ही है। यदि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद माने जाते तो छन्द शब्द से ही ब्राह्मण का ग्रहण होने से पाणिनि उक्त सूत्र में अलग से ब्राह्मण पद न पढ़ते।

और उचित भोजन शरीर को देना चाहिए। संसार में सभी वस्तुएँ उत्तम हैं, परंतु सभी वस्तुएँ सबके लिए उत्तम नहीं हैं। घी, दूध, दही का भोजन सामान्यतः उत्तम और सात्त्विक माना जाता है, किंतु बनाने की विधि और अन्य पदार्थों का मिश्रण, इस सात्विक भोजन को भी राजसी और तामसी बना डालते हैं, अतः यह ध्यान रखना चाहिए कि कहीं हमारा भोजन सात्त्विकता न खो बैठे। आजकल शुद्ध भोजन की अपेक्षा लोग विटामिनों के सेवन को महत्त्व देते है। और विटामिनों की गोलियाँ खाते हैं। यह उचित नहीं। इसकी अपेक्षा भिगोकर छायादार स्थान पर रखे हुए चने, जौ और मूंग के अंकुरिक होने पर उन्हें खाना भी अपेक्षित विटामिनों की क्षतिपूर्ति करता है। आयुर्वेद शास्त्र का कहना है कि यदि कोई व्यक्ति आँवले का रस निकालकर पिए तो वह न केवल एक सौ पचहत्तर वर्ष तक जीवित रहता है, अपितु युवा रहता है। बुढ़ापा उसके निकट नहीं आता। जिनके लिए यह संभव नहीं वे कच्चे किंतु पीले रंग के पाँच किलोग्राम आँवले लेकर उनकी गुठलियाँ निकाल लें और उन आँवलों को दस किलोग्राम चीनी के साथ किसी चीनी या शीशे के वर्तन में डाल लें तथा आठ दस दिन के पश्चात् प्रतिदिन इनका प्रातःकाल सेवन करें तो शरीर स्वस्थ रहेगा और सशक्त होगा, आयु लंबी होगी।

भोजन हमेशा अनुकूल, परिमित तथा ईमानदारी की कमाई का उपयुक्त रहता है। वह स्वच्छ हो, सावधानी और सद्भावना से पकाया जाए और उसे खाते समय निश्चिंतता तथा शांति का वातावरण रखना चाहिए।

शरीर का दूसरा स्तंभ निद्रा है। मनुष्य को यदि अच्छी प्रकार नींद न आए तो शरीर बहुत देर तक चल नहीं पाता। परंतु निद्रा का अर्थ केवल चारपाई या पलंग पर लेट जाना, संसार-भर की चिंता करते रहना और भाँति-भाँति के स्वप्न लेते रहना नहीं है। निद्रा का अर्थ है – ऐसी गहरी नींद, जिसमें कोई स्वप्न न हो, जो बीच में टूटे नहीं, जिसके पश्चात् मनुष्य इस प्रकार जाग उठे, जैसे, उसे नया जीवन मिल गया हो। विचित्र बात यह है कि लोग सब कुछ इस शरीर के लिए करते हैं, परंतु जब शरीर का विचार करने का समय आता है तो शरीर को भूल जाते हैं।

यदि संसार में निद्रा न होती तो सोचिए मनुष्य का क्या बनता? सवेरे से मनुष्य कार्य करता है, चिंताओं में डूबा रहता है, भागता-दौड़ता रहता है, संघर्ष करता है, तब रात्रि आते ही निद्रा की गोद में जाकर सब कुछ भूल जाता है। जैसे थका हुआ बच्चा अपनी माता के वक्षस्थल से लग जाता है। निद्रा से प्रत्येक व्यक्ति को नई शक्ति मिलती है। नया जीवन मिलता है। बैटरी को जिस प्रकार बारंबार चार्ज करना पड़ता है, उसी प्रकार स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये निद्रा आवश्यक है। प्रत्येक बार जब हम सोते हैं तो हमारे शरीर की बैटरी एक बार फिर से चार्ज हो जाती है। और हम जाग जाते हैं – नई शक्ति लेकर, नया साहस लेकर, नई विद्युत से भरपूर होकर। निद्रा जितनी अधिक प्रगाढ़ होगी, यह बैटरी उतनी ही अधिक रिचार्ज होगी। उस समय हमारा सब कुछ सो जाता है, केवल आत्मा और प्राण जागते रहते हैं। शक्ति के अनंत भंडार से मिलकर ये शरीर को नई शक्ति देते हैं।

(5) **वेदों में ब्रह्मविद्या है** - देखो – **तमीशानं0** इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद और चालीसवें अध्याय के मन्त्र यजुर्वेद 'दधन्वेवायदीमनुवोचद् ब्रह्मेति वेरुतत0' इत्यादि मन्त्र सामवेद। महद्यक्षं0 इत्यादि मन्त्र अथर्ववेद में हैं। इस प्रका वेदों में हजारों मन्त्र ब्रह्म के प्रतिपादक हैं।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द तथा राजा शिवप्रसाद जी आदि में पत्रों के माध्यमसे शंकासमाधान हुआ। महर्षि जी चाहते थे कि ये शास्त्रार्थ मौखिक हो। क्योंकि महर्षि दयानन्द के अनुसार मौखिक शास्त्रार्थ में सभी बातों का निर्णय एक से छः महीनों में हो सकता था जबकि पत्र द्वारा शास्त्रार्थ करने में 36 वर्षों में भी निर्णय होना कठिन था। इसके आगे महर्षि दयानन्द लिखते हैं ' "विदित होता है कि अपने मन में जानते हैं कि शास्त्रार्थ करने से हम अपने मत को सिद्ध न कर सकेंगे, अथवा सं0 1926 के शास्त्रार्थ को देखकर घबराहट होगी कि दूर ही से ढोल बजाना अच्छा है। जो उनको यह निश्चय होता है कि हमारा मत वेदानुसार और स्वामी जी का मत वेदविरुद्ध है तो शास्त्रार्थ किये बिना कभी नहीं रहते ।

भी युक्ति–प्रमाण के अनुकूल नहीं है। मुख्य उपनिषदें 11 हैं – इश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्। इसमें केवल ईशोपनिषद् ही सम्पूर्ण रूप में यजुर्वेद का भाग होने के कारण वेदवत् प्रामाणिक है, शेष उपनिषदें वेदानुकूल होने पर ही प्रामाणिक माननी चाहिए, प्रतिकूल होने पर नही ।

राजा शिवप्रसाद जी का तर्क है कि उपनिषदें पराविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या की प्रतिपादक हैं जबकि वेद अपराविद्या के प्रतिपादक हैं, अतः उपनिषदों को भी वेद के समान प्रामाणिक मानना चाहिए । अपनी पुष्टि में राजा जी मुण्डकोपनिषद् का निम्न वचन उद्घृत करते हैं –

'तत्रपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामेवदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिर्षमति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।'

महर्षि जी इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं –

"भला इतना भी राजा जी को बोध नहीं है कि वेदों में पराविद्या न होती तो 'केन' आदि उपनिषदों में कहाँ से आती ? '**मूलं नास्ति कुतः शाखा**' क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदों में अपनी स्वरूपविद्या का प्रकाश न करता तो किसी ऋषि-मुनि का सामर्थ्य ब्रह्मविद्या के कहने में कभी नहीं सकता था जो केनआदि नव उपनिषदों को पराविद्या में मानेंगे तो उनसे भिन्न आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थवेद व मीमांसादि छः शास्त्र पराविद्या में क्यों नहीं ? और जो मैंने वेदों में परा और अपरविद्या लिखी है, उसको कोई विपरीत भी कह सकता है । कभी नहीं ।

तीसरी वस्तु या स्तंभ है – ब्रह्मचर्य। आहार से, निद्रा से शरीर में जो सबसे मूल्यवान वस्तु बनी है उसे सुरक्षित रखना, नष्ट न करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। इसी बात को महर्षि चरक ने भी कहा है –

हितकारी पदार्थ खाने वाला, व्यायाम करने वाला और ब्रह्मचर्य को स्थिर रखने वाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता। हम जो कुछ खाते हैं वह हमारे पेट में जाता है। वहाँ एक बहुत बड़ी भट्टी लगी है। जठराग्नि वहाँ जल रही है। उसके ऊपर यह खाया हुआ खाना पकता है तो उससे रस तैयार होता है। रस फिर भट्टी पर चढ़ता है तो उससे खून बनता है। रक्त भट्टी पर चढ़ता है तो उससे मांस बनता है, तब मेद (चर्बी) बनता है, उसके पश्चात मज्जा और तत्पश्चात् हड्डियाँ बनती हैं, उसके पश्चात् वीर्य बनता है। सबसे अंत में ओज बनता है – वह तेज जो स्वस्थ व्यक्ति के चेहरे पर, उसकी आँखों में, उसके शरीर के प्रत्येक भाग में चमकता हुआ दिखाई देता है। यह वीर्य एक बहुमूल्य इत्र है। इसे सँभालकर रखिए। इससे आँखें बनती हैं, मस्तिष्क बनता है, दिल बनता है, हाथों में काम करने की और पैरों में चलने की शक्ति बनती है। इससे मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है। इसी के बल पर भीष्म पितामह ने शरशय्या पर पड़े होने पर भी, तीरों से छलनी होने पर भी मौत को चुनौती देते हुए कहा था कि जब तक सूर्य उत्तरायण में नहीं आएगा, तब तक मैं नहीं मरूँगा।

6

प्रार्थना का महत्व

जीवात्मा अल्पज्ञ है। इसकी शक्ति सीमित है। जन्म-मरण, सुख-दुःख एवं भोग-विलास के चक्र में फंसा जीव न जाने कितने जन्मों से भटक रहा है। कभी इस जन्म में, कभी उस जन्म में, आनन्द की तलाश में भटकता रहा। कभी सुख-शांति और आनन्द नहीं मिला। जीवात्मा इस दुःख भरी भटकन से निकलना चाहता है। जब उसे बोध हो जाता है कि संसार में सभी भोग दुःख से भरे हुए हैं, तब वह अपने अंतरात्मा की ओर झांकता है। अपने स्वरूप की ओर देखता है। उसके अन्दर की आंखें खुलती हैं । अन्दर की आंखें खुल जाना ही ज्ञान होना कहलाता है। ज्ञान होने पर ही जीवात्मा परमात्मा की ओर बढ़ता है। जैसा कि शास्त्र ने कहा है –

न ऋते ज्ञानान्मुक्ति : ।

बिना ऋत ज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती। इतिहास में कई उदाहरण विद्यमान है जिन्हें ज्ञान हुआ, वे भवसागर से तर गए। कबीर, मीरा, तुलसी, सूर और अनेक सन्त ज्ञानी होकर संसार में अमर हो गये। ऋषि दयानन्द को जिस क्षण बोध हुआ कि यह कैसा शिव है ? जो एक सामान्य चूहे से रक्षा नहीं कर पा रहा है। उनके मन में सच्चे शिव को जानने की इच्छा प्रबल हो उठी। वे घर से चल पड़े। अन्त में उन्होंने सच्चे शिव को जान ही लिया।

जब जीवात्मा को उस सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को

प्रमाण हैं तथा ब्राह्मणादि अन्य ग्रन्थ वेदों के व्याख्या ग्रन्थ होने के कारण परतः प्रमाण हैं। महर्षि जी लिखते हैं –

"जो-जो वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूँ। वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं। इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मणग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मणग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय हैं।" "इसीलिए मन्त्रभाग मूल होने से ब्राह्मणग्रन्थों से अनुकूल हो वा प्रतिकूल हो तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतः प्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकुल हो तो प्रमाण होकर माननीय होने के कारण परतः प्रमाण हैं। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में संहितओं के मन्त्रों की प्रतीक घर-घर के पद, वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है। इसलिए मन्त्र भाग मूल व्याख्येय और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या हैं।"

(4) **क्या उपनिषदें भी वेद नहीं हैं ? स्वामी जी** - इसका उत्तर यह है कि एक 'ईशावास्योपनिषद्' तो यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय होने से वेद है। और केन से लेकर बृहदारण्यक पर्यन्त 9 उपनिषद् ब्राह्मणान्तर्गत होने से उनकी भी इतिहासादि संज्ञा है। उपनिषदों की संख्या 108 अथवा इनसे भी अधिक है। उपनिषदें अति आधुनिक काल तक भी बनती रही हैं। यथा – भारत में मुस्लिम राज्य के दिनों में अल्लोपनिषद् तथा अंग्रेजी राज्य के समय में ईशुउपनिषद् बनी है। जिनमें अल्लाह तथा यीशु का नाम लेकर यवनमत तथा ईसाई मत का प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रका अन्य अनेक उपनिषदें हैं अतः इनको वेद मानना तो किसी

विद्यमान है। अतः उनके वेद नहीं माना जा सकता। महर्षि लिखते हैं – 'ब्राह्मणों जमदग्नि आदि देहधारियों का नाम यों है कि जहाँ –जहाँ ब्राह्मणग्रन्थों में उनकी कथा लिखी है, वहाँ-वहाँ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उनका भी लिखा है। इसलिए वहाँ देहधारी का ग्रहण करना योग्य है। और जहाँ मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं हो सकती वहाँ इतिहास लिखने का भी सम्भव नहीं हो सकतां जो वेदों में इतिहास होते तो अनादि और सबसे प्राचीन नहीं हो सकते क्योंकि जिसका इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात होता है।

''जबकि वेदों में 'त्र्यायुषं जमदग्नेo इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या पदार्थविद्यायुक्त होनी ही उचित है इससे उनमें इतिहास का होना सर्वथा असम्भव हे। जिसलिए जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना चोग्य है वैसा ही ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है। . ... राजा जी जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रमजाल में फँसकर दुःखित न होते।''

(3) **वेद स्वतः प्रमाण हैं तथा ब्राह्मणग्रन्थ परतः प्रमाण हैं -**

स्वतः प्रमाण का अर्थ है कि जिसको प्रामाणित करने के लिए अन्य साधन की आवश्यकता न पड़े; यथा सूर्य स्वतः प्रमाण है। सूर्य को दिखाने के लिए किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि सूर्य तथा दीपक के द्वारा अन्य पदार्थ प्रकाशित होते हैं अतः प्रकाश से प्रकाशित होनेवाले सभी पदार्थ परतः प्रमाण हैं। इसी प्रकार वेद सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने के कारण स्वतः

जानने और पाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है। हर क्षण उसी की धुन लग जाती हैं। चारों ओर उसी की लीला नजर आने लगती है, प्राणी मात्र में उसी के दिव्य दर्शन होने लगते हैं। यही अभिलाषा प्रार्थना-उपासना के रूप में प्रकट होती है। उपासना का अर्थ भी यही है कि अच्छी प्रकार से उस परमात्मा के पास बैठना, उसके नजदीक जाना, उस प्रभु की कृपा प्राप्त करना।

प्रभु की कृपा वे ही मनुष्य प्राप्त करते हैं जो उसकी आज्ञा के अनुसार जीवन नें आचरण करते हैं। अपना व्यवहार सबके साथ प्रीतिपूर्वक और मिल-जुलकर चलाते हैं। अपना खान-पान, रहन-सहन, शुद्ध-सात्विक और धार्मिक रखते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या-द्वेष आदि से बचे रहते हैं। वे ही परमात्मा की भक्ति के पात्र बनते हैं।

परमात्मा की प्रार्थना से मनुष्य के जीवन में कायाकल्प हो जाता है। जीवन की अनन्त शक्तियां, जिनका मनुष्य को बोध भी नहीं होता है, वे शक्तियां संगठित होकर श्रेष्ठ मार्ग की ओर चलने लगती है। मनुष्य में समर्पण की भावना आती है। वह किसी शक्ति के आगे झुकता है। इससे अहंकार छूटता है। नम्रता की भावना जाग्रत होती है। जब जीवन में विनम्रता आने लगती है, तब अपनी भूलों की ओर ध्यान जाता है। कुछ सीखने और जानने की चेतना आती है। नम्रता उन्नति की सीढ़ी है। प्रार्थना से मानव, मानव के निकट आता है। उसमें भावना जाग्रत होती है कि सभी जीवों का एक ही परमात्मा है, यदि हम किसी को कष्ट-दुख तथा पीड़ा देते हैं तो इसका अर्थ है कि हम उस प्रभु को नाराज कर रहे हैं, हमारी वैदिक प्रार्थनाओं में बहुत गूढ़ भाव भरे हैं। इनमें भक्ति और सबके कल्याण की कामना विद्यमान हैं – जैसा कि इस सुन्दर प्रार्थना में दिया गया है –

त्वमेव माता च पिता त्वमेव ।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ।
त्वमेव सर्वम् मम देव देव ।।

हे देवों के देव प्रभु ! आप ही हमारी माता हैं और आप ही पिता हैं, आप ही बन्धु हैं, आप ही सखा हैं, आप ही विद्या हैं, आप ही धन हैं और आप ही हमारे सर्वस्व हैं।

प्रार्थना मानव को बुराइयों से हटाती हैं। अच्छे विचार, संस्कार और भावों की ओर मोड़ती है। जब हम यह मान लेते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक है। हमारे हृदय में भी बैठा, देख तथा सुन रहा है। वह सब कुछ जानता है। तब मन में बुरे विचार आ ही नहीं सकते हैं ? तुरन्त परमात्मा का भय बुरे विचारों और कर्मों के रोकने में सहायक होगा। तुरन्त बुरी वासनाएं भाग जाएंगी। हृदय स्वच्छ बना रहेगा। जहां स्वच्छता और विचारों की निर्मलता रहती है वहीं परमात्मा का आवास है। परमात्मा की भक्ति में शक्ति है। बल और वरदान है। कृपा और आशीर्वाद है। प्रेरणा और चेतना है। त्याग और सुख है। योग और मोक्ष है।

अन्दर बैठा देवों का देव निरन्तर मानव प्रेरणा और भावना दे रहा है बुराइयों से, अधर्म से, बुरे कर्मों से और बुरी वासनाओं से सावधान करता है। जब कोई बुरा काम करने लगते हैं, तुरन्त अन्दर से आवाज आती है, ऐसा न करो ? इससे पाप, निन्दा और लज्जा सहन करनी पड़ेगी, जिनका हृदय निर्मल होता है वे दैवीय आवाज को सुनकर बुरे कर्म से बच जाते हैं। जिसकी आत्मा मलिन, स्वार्थी एवं कामी होती है वे इस आवाज की परवाह न करके अधर्म एवं बुरे मार्ग की ओर बढ़ते जाते हैं और अपना जीवन दुःखी बनाये रहते हैं।

विद्वान् '**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**' इस वाक्य नहीं कह सकते थे। इस वचन को स्वार्थी लोगों ने कात्यायन के नाम से प्रचलित कर दिया। वस्तुतः रामायण, महाभारत, पुराण तथा ब्राह्मण ग्रन्थ आदि समस्त प्राचीन साहित्य में स्वार्थी, अविद्वान् लोगों ने बहुत अधिक भाग अपनी कल्पना से बीच-बीच मेंइस प्रकार मिला दिया है कि जिससे सत्यासत्य का निर्णय ही दुष्कर हो ज़ाता है। केवल वेदों की चारों सहिताएँ हो ऐसी हैं कि जिनमें किसी प्रकार की मिलावट नहीं की गयी क्योंकि उनकी रक्षा चारों वेदों को कण्ठस्थ करके अतिप्रयत्न से की गयी है।

(2) ब्राह्मणग्रन्थ वेद क्यों नहीं हैं ? – ब्राह्मणग्रन्थों को वेद न मानने में महर्षि दयानन्द का प्रबल तर्क यह है कि ब्राह्मणों तथा अन्य ग्रन्थों में तत्कालीन व्यक्तियों का इतिहास मिलता है अतः वे वेद नहीं हो सकते जबकि वेदों में किसी भी मनुष्य अथवा ऋषि-मुनि का इतिहास उपलब्ध नहीं होता क्योंकि सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने के कारण वेद परमात्मा की वाणी हैं। यहाँ पर पूर्वपक्षी प्रश्न करता है कि वेदों में भी तो जमदग्नि, वसिष्ठ आदि ऋषियों तथा हरिश्चन्द्रादि राजाओं का इतिहास मिलता है, अतः उनको वेद किसलिए माना जाता है ? महर्षि दयानन्द इसका उत्तर देते हैं कि वेदों में जो जमदग्नि आदि नाम उपलब्ध होते हैं वे तात्कालिक ऋषियों के नहीं हैं अपितु इनका अर्थ शरीर-परक अथवा सृष्टिपरक है; यथा '**प्राणो वा जमदग्निऋषिः**', '**चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः**' इत्यादि वचनों के अनुसार प्राण, चक्षु आदि की वसिष्ठ आदि संज्ञा है। इससे सिद्ध हुआ कि वेदों में अनित्य इतिहास नहीं है जबकि ब्राह्मण आदि अन्य ग्रन्थों में इतिहास

वस्तुतः विद्वान् एवं सत्पुरुषों का यही कर्त्तव्य है, जिसका निर्देश महर्षि जी ने उक्त शब्दों में किया है। किन्तु ऐसा भी देखने में आता है कि अनेक बार विद्वान् पुरुष भी छल, कपट आदि का आश्रय लेकर तथा अविद्वान् पुरुष भी अपने आपको प्रतिपक्षी की बातों का छल से खण्डन किया करते हैं। इस प्रकार उनका उद्देश्य सत्यासत्य का निर्णय न करके प्रतिपक्षी की पराजय करना मात्र होता है। इससे लाभ के बदले हानि ही होती है। महर्षि भी लिखते हैं – "जब-जब अविद्वान् होकर विद्वान् के बनाये ग्रन्थ को देखने लगता है तब-तब काँच के मन्दिर में प्रविष्ट हुए श्वान के समान भूँस-भूँस के सुख के बदले दुःख ही पाया करता है।" राजा शिवप्रसाद जी के साथ वार्तालाप से महर्षि दयानन्द को भी ऐसा अनुभव हुआ था, इसीलिए उन्होंने अपने उत्तर स्वामी विशुद्धानन्द जी को लक्ष्य करके दिये थे क्योंकि स्वामी विशुद्धानन्द जी अच्छे विद्वान् व्यक्ति थे। इनको प्रश्नोत्तर इस प्रकार सम्पन्न हुआ –

राजा जी - क्या आप ब्राह्मण पुस्तको को वेद नहीं मानते ?

स्वामी जी - नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है, जीवोक्त को वेद नहीं कहते। जितने ब्राह्मणग्रन्थ हैं, वे सब ऋषि-मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर-प्रणीत हैं। जैसे ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त और सत्य मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं। परन्तु जो-जो वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूँ।

जैसे सोना अग्नि में तपकर शुद्ध होता है। वैसे ही प्रभुभक्ति से जीवात्मा शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनता है। तुलसी जी का कथन है कि जिसका हृदय निर्मल है, वही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। प्रार्थना से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है। बुद्धि में सात्विक गुण आते हैं। संसार में बुद्धि बल ही श्रेष्ठ बल है। गायत्री मन्त्र में भी परमात्मा से श्रेष्ठ बुद्धि की कामना की गई है। जब मनुष्य का विनाश निकट होता है तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। एक नहीं अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। रावण विद्वान होकर भी विनाश को प्राप्त हुआ क्योंकि उसकी बुद्धि पर-स्त्री की ओर थी। इसी से उसका विनाश हुआ। प्रार्थना हमें श्रेष्ठ बुद्धि बल देती है।

जब हमारी कोई वस्तु नीचे गिर जाती है। कोई उठा देता है तब हम उसका धन्यवाद करते हैं। उसका अनेकशः आभार और कृतज्ञता प्रकट करते हैं। किन्तु जिस परमात्मा ने जीवन दिया, जीने की सारी सामग्री दी। सुख-भोग के साधन दिए। स्वस्थ शरीर और इन्द्रियां दीं। जो नित्य जीवन देकर उठाता है। क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं बनता कि हम नित्य प्रातः-सायं उसका धन्यवाद करें, उसके दिए हुए पदार्थों का आभार प्रकट करें ? उसके कृतज्ञ बनें ? यही तो सन्ध्या-प्रार्थना और उपासना बताते हैं कि ओ मनुष्य ! तू – उस प्रभु की सत्ता स्वीकार कर, उसके पास बैठ। उससे मांग जो सबको बांट रहा है । यही प्रार्थना की प्रेरणा है।

डा. महेश वेदालंकर

7

ऋषि दयानन्द की अमरगाथा

एक समय था जब भारत पराधीन था। सर्वत्र अविद्या और अन्धकार की घटाएँ छाई हुई थीं। भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य की होली हो रही थी। इतिहास में परिवर्तन करके उसे विकृत किया जा रहा था। सत्य सनातन वैदिक धर्म लुप्त हो रहा था। मन्दिरों में पण्डों और पुजारियों का बोलबाला था । पवित्र मन्दिर पाप और अनाचार के केन्द्र बन रहे थे। कहीं अनाथ बालकों का बिलखना तो कहीं असहाय विधवाओं का करुण क्रन्दन सुनाई देता था। बाल-विवाह और अनमेल विवाह बढ़ रहे थे। नारी जाति की स्थिति दयनीय एवं शोचनीय हो रही थी। उसे पग-पग पर अपमानित और पददलित समझा जाता था। "स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्" स्त्री और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। "द्वारं किमेकं नरकस्य नारी" नरक का एक मात्र द्वार क्या है ? नारी, शंकराचार्य ने नारी को नरक का द्वार घोषित कर दिया था।

पति की मृत्यु के बाद स्त्रियों को उनके साथ जीवित जला दिया जाता था। शूद्रों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। वेदों को

22

महर्षि दयानन्द रचित लघु ग्रंथ

भ्रमोच्छेदन

कार्त्तिक सुदी 14 गुरुवार संवत् 1936 वि. में महर्षि दयानन्द ने काशी में विजयनगराधिपति के आनन्दबाग में निवास किया था। उसी अवसर पर उनका राजा शिवप्रसादजी, तथा उन दिनों सनातनियों में सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्दजी से कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर लिखित बातचीत हुई थी। इसमें मुख्यतः वेद सम्बन्धी प्रश्न थे। यथा – वेद संज्ञा किन की है, ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं या नहीं, वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः इत्यादि। इन बातों के विषय में उस समय बड़े से बड़े विद्वान् भी भ्रम में थे क्योंकि वे ब्राह्मणादि ग्रन्थों, उपनिषदों को भी वेद मानते थे तथा वेद को स्वतः प्रमाण भी नहीं मानते थे। स्वामी दयानन्द ने अपनी विद्वता के आधार पर इन सभी भ्रमयुक्त बातों का निराकरण किया था। इसीलिए इस पुस्तक का नाम भ्रमोच्छेदन रखा गया है।

महर्षि दयानन्द का उद्देश्य था कि विद्वानों की भ्रमपूर्ण बातों को दूर करके तथा अविद्वानों की अयोग्यता दूर करके सबके सामने सत्य अर्थ का प्रकाश किया जाए। महर्षि स्वयं लिखते हैं – "जब जब अयोग्य मुझसे मिलता है तब-तब प्रथम उसकी अयोग्यता छुड़ाने में प्रयत्न करता हूँ। जब वह धर्मात्मा से योग्य होता है, तब मैं उसको प्रेम से उपदेश करता हूँ।"

पड़े। आप रोएँ नहीं। चिल्लाएँ नहीं। अधीर न हों। अपनी दवाई अपने-आप स्वयं पी लें तो आपके घरवालों को परेशानी कम होगी। यह भी आपका स्वावलंबन होगा।

"मनुष्य स्वयं अपना भाग्यविधाता है। गरीब से गरीब होकर भी मनुष्य अपने देश का सबसे बड़ा धनी बन सकता है।"
– स्वामी रामतीर्थ

"उन्नति कहीं आकाश से नहीं टपक पड़ती। मनुष्य धीरे-धीरे और लगातार अपने-आपको सुधारता-सँवारता रहता है और एक दिन वह अवश्य उन्नति को प्राप्त कर लेता है।"
– स्वेट मार्डन

लोग भूलते जा रहे थे। उनका पठन-पाठन बन्द हो गया था। वेदों का स्थान मनुष्य की रचनाओं ने ले लिया था। वेदों को गड़रियों के गीत की संज्ञा दे दी गई थी। प्रत्येक क्षेत्र में भयावह स्थिति बन गई थी। मानव दानव बनकर भटक रहा था।

ऐसे घोरतम अन्धकार में संसार को ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जिसमें कपिल, कणाद और गौतम का पाण्डित्य हो, जिसमें हनुमान् और भीष्म पितामह जैसा चमकता हुआ ब्रह्मचर्य हो, जिसमें भीम जैसा अपार बल हो, जिमसें गौतम बुद्ध जैसा त्याग और वैराग्य भरा हो, जिसमें श्री रामचन्द्र की गौरवपूर्ण मर्यादा और योगीराज श्री कृष्ण की नीतिमत्ता हो, जिसमें पतञ्जलि और व्यास जैसे आध्यात्मिकता हो, इन सभी गुणों से विभूषित एवं अलंकृत युगपुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती मानव मात्र को "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का अमर सन्देश देने के लिए भारत-भूमि पर अवतीर्ण हुए ।

ऋषि दयानन्द का जन्म फाल्गुन वदि दशमी संवत् 1881 तदनुसार शनिवार 12 फरवरी सन् 1825 को मौरवी राज्य (गुजरात) के अन्तर्गत टंकारा ग्राम में हुआ। आपके पिताजी का नाम कर्षणजी तिवारी था। कर्षणजी औदीच्य ब्राह्मण थे। आप बहुत सारी भूमि के स्वामी एवं जाने-माने लेन-देन के लिए सुप्रसिद्ध सम्मानित सज्जन थे। कर्षणजी को शैवमत में निष्ठा और आस्था थी। ऋषि दयानन्द का जन्म का नाम मूलशंकर था। ऋषि अपने माता-पिता की प्रथम सन्तान थे। मूलशंकर के जन्म पर सम्पूर्ण परिवार में बड़ी धूमधाम से आनन्दोत्सव मनाया गया।

मूलशंकर ने पांच वर्ष की आयु में पढ़ना सीखा। आठ वर्ष की

आयु तक व्याकरण का सामान्य ज्ञान, हितोपदेश, रघुवंश के कुछ सर्ग, शिव सहस्रनाम और कई स्तोत्र पाठ याद कर चुके थे। आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत हुआ। माता-पिता कट्टर शैव थे। अतः उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि मूलशंकर भी नियमपूर्वक व्रत-उपवास किया करें। पिताजी मूलशंकर को सदा मन्दिरों और शिवोत्सवों में साथ ले जाते थे।

जब मूलशंकर 13 वर्ष के हुए तो पिताजी ने बुलाकर कहा– "बेटा शिवरात्रि है, तुम उपवास रखना, शिव के मन्दिर में जाकर जागरण करना, शिवरात्रि पर तुम्हारी शैवमत में दीक्षा होगी।" शिवरात्रि को नगर के बाहर एक बड़े शिवालय में नगर के भक्त और प्रतिष्ठित जन आकर व्रतपूर्वक पूजा-पाठ, जप और जागरण किया करते थे। मूलशंकर भी पिता के साथ उसी मन्दिर में पहुंचे। पूरा मन्दिर टन-टन, हर-हर और बम-बम महादेव के नारों से गूँज रहा था। सम्पूर्ण मन्दिर में भक्ति-भावना और श्रद्धा का वातावरण था।

प्रथम और द्वितीय प्रहर की पूजा के बाद धीरे-धीरे सब की आंखें नींद से भरने लगीं। सबसे पहले सोने वालों में मूलशंकर के पिताजी थे। पुजारी जी भी सो गये ।

चारों ओर नीरवता और निस्तब्धता थी । शिव का सच्चा भक्त अकेला मूलशंकर जाग रहा था। उसने वेद के पवित्र ज्ञान को पढ़ा और समझा था, "यो जागार तं ऋचा कामयँन्ते" जो जागता है उसे ज्ञान प्राप्त होता है। निद्रा आती तो, पानी के छींटे मारकर अपने को सजग और सावधान बनाये हुए थे। जिज्ञासु मूलशंकर शिवदर्शन के लिए उत्सुक और अपलक शिवमूर्ति को देख रहे थे। कुछ क्षणों में देखते हैं चूहे बिलों से निकल कर शिव

(घ) छुट्टियों में अवकाश के समय कोई धंधा या सामाजिक सभा का कार्य अवश्य करो।

(ङ) तुममें जो योग्यता है उसके अनुकूल क्षेत्र में प्रवेश करो और अपने गुणों को कार्य द्वारा प्रकट करो। वहाँ तुम्हारी प्रशंसा भी होगी और मान भी।

(च) तुम वह नई बातें सीखो जो तुममें नहीं है।

विद्यार्थियों के लिए स्वावलंबन के काम

1. उन महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ें, जो साधारण घर में उत्पन्न होकर भी महान् बने। जैसे – श्री लालबहादुर शास्त्री, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा हंसराज इत्यादि।

2. यदि आप विद्यालय में पढ़ रहे हैं तो अतिरिक्त समय में जिल्दें बाँधने, ट्यूशन करने, दूध के डिपो में काम करने, अखबार बेचने का काम करें।

3. यदि आप नौकरी कर रहे हैं तो अतिरिक्त समय में ऊँची शिक्षा प्राप्त करते रहें।

4. आप पढ़ाई में कमजोर हैं तो परिश्रम से उसे दूर करें, माता-पिता पर ट्यूशन का भार न डालें।

5. यदि आप रोगी हैं तो दूसरों पर कम से कम भार डालें। जो काम स्वयं नहीं कर सकते उसके लिए तो दूसरों की मदद अवश्य लें। किन्तु आप इतनी दुर्बलता न दिखाएँ कि माता-पिता, भाई-बहन को हर समय सिरहाने बैठना

विद्यार्थियो! तुम उस भगवान् के पुत्र हो जो सारी दुनिया का स्वामी है। अतः तुम अपने को छोटा और दुर्बल मत समझो। तुम अपनी योग्यता का स्वयं सम्मान करो तो देखना, सारा संसार तुम्हारा मान करने के लिए झुक जाएगा। इसके विपरीत यदि तुम अपनी दुर्बलताएँ गिनते रहे, यदि तुम अपने रोगों और त्रुटियों को देखते रहे तो तुम सचमुच दीन, हीन, दरिद्र, निराश और असहाय बन जाओगे। यदि तुम गिर जाओगे तो तुम्हें कोई दूसरा उठाने नहीं आएगा। ध्यान रखो की शरीर से गिरा हुआ मनुष्य उठ भी सकता है, किन्तु मन से गिरा हुआ मनुष्य कभी नहीं उठ सकता। अतः अपने बल की उपासना करो। अपनी छिपी हुई शक्तियों को खोज निकालो। फिर तुम अपने सामने एक ऊँचा आदर्श रखकर उसे प्राप्त करने के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगा दो।

स्वावलबन के लिए निम्नलिखित बातों का अभ्यास करो:

(क) आज से ही अपने शरीर को बलवान बनाने की योजना बना लो।

(ख) आज ही अपनी पढ़ाई की कमजोरी दूर करने का उपाय खोज लो।

(ग) अब तक जो साधन तुम्हारे पास नहीं हैं, उन्हें अपने परिश्रम से प्राप्त करने का यत्न करो।

पिण्ड पर उछल-कूद मचा रहे हैं। शिव पिण्ड पर चढ़ाये हुए नैवेद्य को निर्भय होकर खाने लगे और मल-मूत्र से उसे अपवित्र करने लगे। यह दृश्य मूलशंकर ने बड़े कुतूहल पूर्ण नेत्रों से देखा। उसके हृदय में ज्ञान-ज्योति कौंध गई । विचार तरंगे उमड़ने लगीं। विचार आया, सुना था, 'शिव त्रिशूलधारी है, दैत्यों का संहारी है, सर्वशक्तिमान है।' यह कैसा शिव है जो सामान्य चूहों से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। ? इसमें तो चूहों को भगाने की भी सामर्थ्य नहीं है ! यह कैसा महादेव है ? इस शंका ने मूलशंकर के हृदय में बवण्डर खड़ा कर दिया। पिताजी को जगाया। डांट-फटकार के सिवा कोई उत्तर न था । घर आकर व्रत तोड़ दिया। विचार बदल गये। मूर्ति-पूजा से आस्था हट गई। सच्चा शिव मूर्ति में नहीं है। सच्चे शिव की खोज करनी चाहिए। "मैं सच्चे शिव के दर्शन करूंगा।" उसी का सच्चा पूजन करूंगा। इन जड़ प्रतिमाओं को कभी नहीं पूजूँगा। मूलशंकर एक रात जागने के बाद फिर जीवन भर नहीं सोये। इस घटना ने मूलशंकर को दयानन्द बना दिया।

बहन और चाचा, जिन्हें वो बहुत प्यार करते थे, की मृत्यु ने मूलशंकर के ज्ञान और वैराग्य को भी दृढ़ बना दिया। हृदय से तूफान उठा, "जो पैदा हुआ है उसको मरना है। मृत्यु पर कैसे विजय मिल सकती है ? मृत्यु से छोटा-बड़ा कोई भी जीव बच नहीं सकता है। यह जीवन क्षण-भंगुर है। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे जन्म-मरण के दुःख से मुक्ति हो। अमर जीवन की उपलब्धि हो। लोगों के कहने और धिक्कारने पर भी उनकी आंखें गीली नहीं हुई। मूलशंकर मौन साधे हुए शून्य आकाश की ओर देखते रहते। इस मृत्यु रूपी व्याधि से कैसे छुटकारा मिल सकता है। अमर जीवन के लिए कौन से उपायों का सहारा लिया जाये।

मुक्ति-मार्ग में किसका भरोसा किया जाये, आदि प्रश्न उन्हें व्याकुल किये रहते थे। घर वाले मूलशंकर की विरक्ति से चिन्तित हो उठे। वैराग्य से विचलित करने के लिए विवाह का प्रस्ताव किया गया। किन्तु वह वीतरागी इस मोह-पाश से छूट निकला। साफ कह दिया कि मैं विवाह नहीं कराऊँगा। 22 वर्ष की आयु में उठते यौवन और भरी जवानी में, भरे पूरे सुख भोग विलास को साज-सामग्री को, और बन्धु-बान्धवों के दुलार-प्यार को छोड़कर घर से निकल पड़े।

सच्चे शिव की प्राप्ति और मृत्यु पर विजय के लिए मूलशंकर साधु, महन्तों एवं योगियों की खोज में घने जंगल व पर्वतों की गुफाओं और नदियों के किनारे घूमने गये। योग की क्रियाएँ सीखीं। कहीं भी आत्मशान्ति न मिली । तीव्र वैराग्य की परिणति संन्यासी बनकर दयानन्द सरस्वती के रूप में हुई। अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए मथुरा पहुंचे। गुरु विरजानन्द का द्वार खटखटाया। आवाज आई कौन है ? दयानन्द ने कहा "यही तो जानने आया हूं कि मैं कौन हूं ? इस उत्तर ने गुरु का हृदय खोल दिया। गुरु ने समग्र वेद-शास्त्र और संस्कृत व्याकरण पढ़ाया। गुरु को ऐसा शिष्य जीवन में न मिला था। दयानन्द में गुरु भक्ति कूट-कूट कर भरी थी। अध्ययन समाप्त हुआ। गुरु ने कहा, "दयानन्द मैं गुरु दक्षिणा चाहता हूं।" दयानन्द – "आपके चरणों में जीवन अर्पित करता हूं।" विरजानन्द – "प्रण करो कि वेदों के उद्धार में जीवन लगा दोगे। संसार में फैले अज्ञान, अविद्या और जड़ता को दूर करोगे। दीन-हीन जनों का उद्धार करोगे। आर्य जनता की बिगड़ी हुई दशा को सुधारोगे। मत-मतान्तरों के कारण जो कुरीतियां और अन्धविश्वास फैला है उसका निवारण करोगे। प्रिय वत्स ! गुरु दक्षिणा में यही वस्तु मुझे दान करो। अन्य

वह है अपनी शक्ति। इसी का नाम स्वावलबन है। इस गुण का अभ्यास हमें धीरे-धीरे अवश्य करना चाहिए।

विद्यार्थियो! दूर क्यों जाते हो। अपने पैरों की ओर देखो। जब तुम नन्हे शिशु थे, तुम्हारे पाँव कच्चे और कोमल थे। इसके सहारे चलना तो दूर, तुम बैठ भी नहीं सकते थे। तुम दिन-रात दूसरों के सहारे जीते थे। तुम असहाय थे। धीरे-धीरे तुम्हारी टाँगों में बल आया। तुमने गिर-गिरकर उठना सीखा, चलना सीखा, दौड़ना सीखा। तुम अपने पाँव पर खड़े हो गये।

तुम शरीर से तो स्वावलंबी हो गये, पर आर्थिक रूप से अब भी तुम अपने माता-पिता पर निर्भर करते हो। रोटी-कपड़े, शिक्षा-दीक्षा, देख-भाल आदि के लिए तुम घर वालों के मुँह की ओर देखते हो। इस प्रकार कब तक तुम परावलंबी रहोगे? धीरे-धीरे अपना भार स्वयं उठाना सीखो। जो काम तुम स्वयं कर सकते हो उन्हें अवश्य करो। केवल अपने ही काम क्यों, दूसरों के कुछ काम भी तुम क्यों न करो।

यह बात गाँठ बाँध लो कि जीवन में स्वावलंबन की बड़ी आवश्यकता है। यदि तुम उन्नति करना चाहते हो तो तुम्हें अपना हित आप करना होगा। तुम अपने पर विश्वास रखो कि जिस काम में तुम हाथ डालोगे उसे अवश्य पूरा करोगे, तो तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी।

भी लिया। जिज्ञासावश देवदत्त ने उससे पूछ ही लिया, "भैया, दिन में कितनी मजदूरी कर लेते हो?"

"कभी पन्द्रह, कभी बीस रूपए।" कुली ने कहा।

बस बालक देवदत्त ने अगले दिन से ही रेलवे स्टेशन पर कुली का काम आरम्भ कर दिया। वह सायंकाल दो-तीन घंटे मजदूरी करता और पाँच-सात रुपये कमा लेता। छुट्टी के दिन वह प्रातः या दोपहर को भी मजदूरी कर लेता। इस प्रकार वह पूरे तीन वर्ष तक पढ़ता रहा और कुली का काम करता रहा। फिर बी०ए० में पढ़ते हुए ट्यूशन पढ़ानी आरम्भ कर दी। अपने परिश्रम और स्वावलंबन के फलस्वरूप एम०ए० में वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

विद्यार्थियो ! जो सदा दूसरे के मुँह की ओर ताकता रहता है और 'मदद मदद' की पुकार करता रहता है वह कभी समर्थ नहीं बन पाता। क्या तुमने किसी भिखारी को धनवान होते देखा है? जिसे भीख माँगकर खाने की आदत पड़ चुकी हो भला वह क्यों लगा अपने हाथ-पाँव हिलाने ? वह सदा माँगता ही रहेगा, जीवन-भर भिखारी ही बना रहेगा। वह उन्नति कर ही नहीं सकता, क्योंकि दूसरों की इच्छा है वह मदद करें, न करें। ऐसी सहायता का क्या भरोसा जो आज है तो कल पता नहीं मिले न मिले।

इसके विपरीत एक शक्ति ऐसी है जिस पर हम सदा भरोसा कर सकते हैं। वह जब चाहे हमें मिल सकती है।

सांसारिक पदार्थों की मुझे चाह नहीं है।"

गुरु का आशीर्वाद लेकर दयानन्द लोगों के उपकार और उद्धार के लिए चल पड़े। उन्होंने वेदों के प्रचार का संकल्प किया। यह सिद्ध किया कि वेदों में मूर्तिपूजा कहीं भी नहीं है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। अतः स्वतः प्रमाण हैं। पुराण तन्त्र आदि वेद विरुद्ध त्याज्य ग्रंथ हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् और अनन्त शक्ति वाला है। उसे जानना चाहते हो तो वेदों की आज्ञा का पालन करो। अज्ञान को दूर करो। अपना जीवन सात्विक, धार्मिक और गंभीर बना लो। वह प्रभु तुम्हारे पास है। जैसा कि ऋषि ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश के आरंभ में कहा है "ऋत वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि"। उन्होंने जीवन भर सत्य का ही निर्भीकता पूर्वक प्रचार और प्रसार किया। सत्यदर्शन के लिए ही सारा जीवन समर्पित कर दिया। लोगों ने उन्हें गालियां दीं, मार डालने की धमकियां दीं। कई बार विष दिया। उन पर पत्थर बरसाये गये। पर यह आजीवन विष गरल पीता रहा है और बदले में प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अमृत लुटाता रहा। उस महामानव का सारा जीवन मुसीबतों, कष्टों और चुनौतियों का रहा। कवि के शब्दों में –

सदियों तक इतिहास न समझ सकेगा।

तुम मानव थे या मानवता के महाकाव्य ।।

ऋषि दयानन्द ने मानव को मानव बनकर रहना और जीना सिखाया। उनका हृदय दया-करुणा और प्रेम का सागर था। उनके जीवन की अनेक घटनाएं प्रेरणा, आदर्श और जीवन चेतना से भरी हुई हैं। ऐसा अद्भुत, विलक्षण, तपस्वी, त्यागी, देवात्मा

जिस व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को मिला हो, वह कोटिशः धन्य है। कुछ संक्षिप्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी घटनाएँ स्मरणीय हैं –

प्रयाग में एक दिन ऋषिवर गंगा के किनारे बैठे हुई प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द ले रहे थे। उन्होंने देखा एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथों पर उठाए हुए गंगा में प्रविष्ट हुई।

कुछ गहरे पानी में जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालक के शव को रोते और बिलखते हुए पानी में प्रवाहित कर दिया। ऋषि इस दृश्य को देखकर अपने हृदय को नहीं संभाल सके। करुण स्वर में बोले, हाय ! हमारा देश इतना निर्धन हो गया है कि मृतक शरीर को कफन भी नहीं मिलता। उनकी आंखों से आंसुओं की लड़ी टूट पड़ी। कभी यह भारत विभूति का भव्य भवन था, ऐश्वर्यों का स्थान था, शोभा और सुखों का क्रीड़ा धाम था, परन्तु आज इस देश की यह दयनीय दशा है। ऋषि दयानन्द अपने सुख-दुख के लिए कभी नहीं रोये, उन्होंने अपने लिए कभी कुछ नहीं मांगा। वे रातों में जाग कर देश में फैले अज्ञान, अन्धकार, कुरीतियों और जड़ता के लिए घण्टों करुण रुदन किया करते थे । एक कवि के शब्दों में ऋषि की मार्मिक स्थिति ऐसी थी –

इक हूक सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है।

हम रात को उठकर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है।।

ऋषि दयानन्द ने देश भर का भ्रमण किया। अनेक राजे-महाराजे उनके शिष्य बन गए थे। बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानों से उनके शास्त्रार्थ हुए। सभी विपक्षी उनकी विद्या, बुद्धि और तेज

परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो गया। किन्तु इसके बाद घर की गाड़ी कैसे चले ? जब रोटी-कपड़े के लिए ही पैसा नहीं तो बालक देवदत्त पढ़ाई का खर्च कैसे निभाये ? मुख्याध्यापक जी ने दया करके उसका शुल्क माफ कर दिया, पर रोटी-कपड़े के लिए पैसा कहाँ से आए? फिर घर में उसकी माँ भी है, एक छोटा भाई भी था। लोगों ने सलाह दी कि वह पढ़ाई छोड़कर छोटी-मोटी नौकरी कर ले।

किन्तु बालक देवदत्त आगे पढ़ना चाहता था। उसने नगर की अनुदान देने वाली संस्थाओं से सहायता माँगी। किसी ने एक महीना, किसी ने दो महीना तक कुछ मदद देकर अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। देवदत्त को आशा थी कि नगर के दानवीर सेठ चोपड़ा जी उसकी विशेष सहायता करेंगे। किन्तु 'आजकल कारोबार मंदा है' कहकर उन्होंने आशा की जड़ ही काट डाली। कोई साधारण बालक होता तो हिम्मत हार बैठता और एकदम पढ़ना छोड़ देता, किन्तु बालक देवदत्त ने साहस न छोड़ा। अब तक वह दूसरों से सहायता प्राप्त करने की आशा करता था, अब उसने अपने पैरों पर स्वयं खड़े होने का संकल्प कर लिया। उसने निश्चय कर लिया कि वह सुबह-शाम डबल रोटी बेचेगा और दिन को विद्यालय में पढ़ेगा। इस प्रकार घर की रोटी का थोड़ा-बहुत खर्चा निकलने लगा।

एक दिन एक कुली ने उस से डबल रोटी और मक्खन

21

महान् गुण : स्वावलंबन
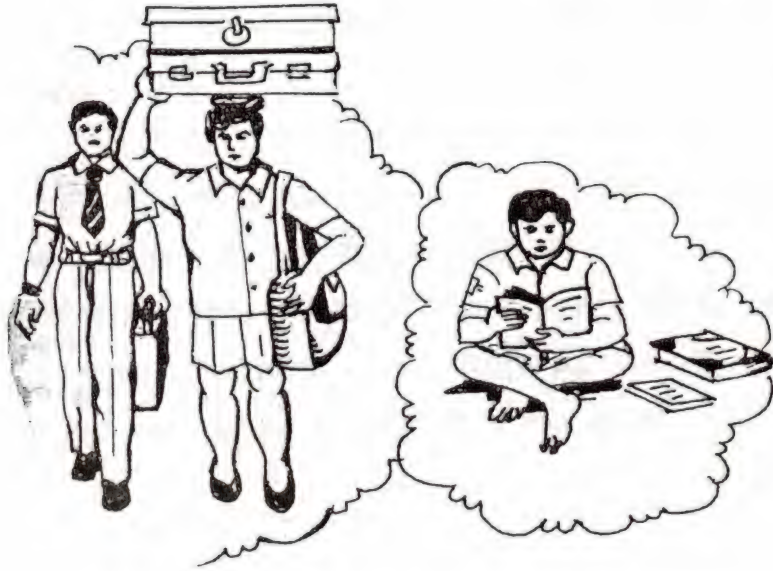
डी०ए०वी० कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री देवदत्त शर्मा विद्यार्थीकाल में कुली का काम करते रहे हैं। यह तब की बात है जब वे सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। एक दिन सहसा उनके पिताजी को सर्दी लग गई और निमोनिया से उनका देहान्त हो गया। पीछे घर में कमाने वाला कोई न था। घर में बची बहुत थोड़ी पूँजी से उनकी माता जी ने छः मास तक घर का खर्च चलाया और बालक देवदत्त सातवीं की

बल से प्रभावित रहे। जो भी उनके संसर्ग में आया, उसका कायाकल्प हो गया। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में चुम्बकीय आकर्षण शक्ति थी। घोर शत्रु भी उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे। स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन को ऋषि के एक भाषण ने बदल दिया। अमीचन्द के जीवन को एक वाक्य ने ही बदल दिया। उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि जीवन कहीं से कहीं पहुंच गया। इसके पीछे उनका चरित्र-बल था।

बरेली की सभा में जिसमें कलक्टर और कमिश्नर भी उपस्थित थे। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से व्याख्यान देते हुए कहा, 'लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न नाराज हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।

अमृतसर के व्याख्यान में पत्थरों की वर्षा हुई। ऋषि हँसे और बोले, यह फूलों की वर्षा है। अपने विषदाता को यह कहकर मुक्त कर दिया। "मैं दुनिया को कैद कराने नहीं, बल्कि उसे छुड़ाने आया हूं। दुष्ट यदि दुष्टता नहीं छोड़ते, तो हम अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें?"

'सत्यमेव जयते नानृतम्।'

सर्वदा सत्य की जय और असत्य की पराजय होती है। ऋषि को इस कथन में पूर्ण आस्था थी। सत्य के लिए ही जीवन भर विरोध, अपमान और जहर पीते रहे। वे महान् योगी, उच्चतम दार्शनिक, गंभीर विचारक और भविष्यद्रष्टा थे। उन्होंने मृत्यु को हँसते-हँसते वरण किया। कभी भी अन्याय, अधर्म, असत्य के आगे झुके नहीं। उनकी वाणी में अद्भुत शक्ति और प्रभाव था। जोधपुर प्रवास में एक दिन ऋषि दयानन्द महाराजा यशवन्त सिंह

के दरबार में पहुंचे। उस समय महाराज के पास वेश्या नन्हीं जान आई हुई थीं। ऋषि के आगमन से महाराज घबरा गये। वेश्या की डोली को स्वयं कंधा लगाकर जल्दी से उठवा दिया। किन्तु इस दृश्य को देखकर ऋषि का हृदय अत्यन्त दुःखित हुआ। उन्होंने कहा, – "राजन् ! राजा लोग सिंह समान समझे जाते हैं। स्थान-स्थान पर भटकने वाली वेश्या कुतिया सदृश है। एक सिंह को कुतिया का साथ अच्छा नहीं है। इस कुव्यसन के कारण धर्म-कर्म भ्रष्ट हो जाता है। मान-मर्यादा को बट्टा लगता है। कई बार ऋषि ने अपने भक्तों के समक्ष अपने हृदय की मार्मिक पीड़ा को रखा, "हमारे देश के बड़े-बड़े मनुष्यों के आचार विचार तो इतने बिगड़ गये हैं कि इनका सर्वनाश तो कभी का हो चुका होता। परन्तु इनकी पत्नियों का पतिव्रत धर्म ही इन्हें अभी तक बचाये हुए है। कुलवती आर्य नारियां ही अपने धर्म से इनकी रक्षा कर रही हैं।"

वेश्या नन्हीं बाई की राजदरबार में आव-भगत उठ गई। उसे बड़ी गहरी ठेस पहुंची। उसने षड्यन्त्र रचा। इसमें स्वामी जी के विरोधी भी सम्मिलित थे। स्वामी जी के विश्वस्त पाचक पं. जगन्नाथ को लालच देकर पापकर्म के लिए तैयार किया गया। पाचक ने रात्रि को दूध में हलाहल (विष) घोल कर पिला दिया।

थोड़ी देर बाद ही पेटदर्द और कै आने आरम्भ हो गये। पीड़ा अत्यन्त मर्मान्तक और असह्य थी। ऋषि शांत चित्त लेटे रहे। उन्हें कालकूट के विष के प्रयोग का भान हो गया। किन्तु दया के धनी दयानन्द ने जोधपुर के महाराज या अन्य भक्तों को प्रकट नहीं किया। उन्होंने पाचक को बुलाया। प्रेमपूर्वक पूछा, उसने सारे षड़यन्त्र का भेद खोल दिया। बड़े शांत भाव से बोले –"जगन्नाथ! मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया। आप

बढ़ती है। हँसमुख व्यक्ति देर तक जवान रहता है। उसकी आयु बढ़ती है। अतः हम अपना सारा जीवन हँसते-मुस्कराते हुए बिता दें।

प्रसन्नता के लिए हमारा संकल्प – हम अपना स्वास्थ्य सुधारेंगे। हम मन से सबका भला सोचेंगे। हम अच्छी पुस्तकें पढ़ेंगे। हम खेल-कूद में बढ़-चढ़कर भाग लेंगे। हम लोगों से मधुरता से बात करेंगे। हम अधिक से अधिक मित्र बनाएँगे। हम छोटी-छोटी बातों पर न चिढ़ेंगे, न शिकायत लगाएँगे और न मन में ईष्या करेंगे। हम उचित समय पर स्वयं भी हँसेंगे, दूसरों को भी हँसाएँगे। हम परीक्षा के दिनों में भी मनोरंजन के लिए समय निकालेंगे। संकट आने पर हम रोएँगे या चिल्लाएँगे नहीं, अपितु हम धैर्य धारण करके संकट से पार उतरने के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे।

से मिलती है।

6. अधिक से अधिक अच्छे मित्र बनाओ।

7. अपने परिश्रम पर विश्वास रखो।

8. नियम, न्याय और अनुशासन का पालन करो।

9. ईश्वर और उसके न्याय पर विश्वास रखो।

10. निश्चय जानो कि कष्ट, तुम्हारी भूलों का परिणाम है।

अतः दुःख आने पर या असफल होने से निराश मत हो और घबराओ नहीं, अपितु धैर्य और वीरता से उसे सहन करो और अपनी भूलों पर विजय प्राप्त करके पुनः सफलता-प्राप्ति के लिए यत्न करो।

इन उपायों से तुम्हें अवश्य प्रसन्नता होगी। तुम्हारा जीवन एक मुस्कराहट-भरा जीवन बन जायेगा। तुम कठोर परिश्रम में भी मुस्कराओगे। हर काम में तुम्हारा मन लगेगा। प्रत्येक व्यक्ति तुमसे मिलने के लिए व्याकुल रहेगा। तुम इसी जीवन में स्वर्ग के समान सुख को प्राप्त कर लोगे।

सदैव स्मरण रखो ! प्रसन्नता जीवन का प्रभात है। इसकी हर किरण दूसरों को आनंद और खुशियाँ बाँटती है। यदि तुम स्वयं प्रसन्न होगे तो सारा संसार तुम्हें हँसता-मुस्कराता हुआ दिखाई देगा। जब हम बहुत प्रसन्न होते हैं तब हमारी कार्य-शक्ति पहले से कई गुणा अधिक बढ़ जाती है। प्रसन्नता से हृदय खिलता है। इससे मन की संकीर्णता दूर होती है। इससे सफलता में वृद्धि होती है। स्मरण-शक्ति

नहीं जानते कि इस समय लोक हित की कितनी हानि हुई है। अच्छा विधाता के विधान में ऐसा ही था इसमें आपका क्या दोष है। जगन्नाथ! लो ये कुछ रुपये हैं, मैं आपको देता हूं, आपके काम आयेंगे। जैसे भी हो राज्य की सीमा से बाहर नेपाल राज्य में छिपकर ही तुम्हारे प्राण बच सकते हैं। अब देर न करो, जाओ चुपचाप भाग जाओ। मेरी ओर से सर्वथा निश्चिंत रहना।"

दयानन्द अद्भुत है तेरी क्षमा! विषदाता को भी प्राण दान! संसार के इतिहास में इस प्रकार का अन्य उदाहरण और किसी जीवन-चरित्र में नहीं मिलेगा। उन्हें चौदह बार विष दिया गया किन्तु इस महामानव ने किसी को दण्ड दिलाने की बात तक मन में नहीं आने दी।

पर्याप्त चिकित्सा हुई। विष शरीर में फैलने लगा। जलवायु परिवर्तन के लिए आबू गये। पुनः अजमेर आ गए। ठीक एक मास एक दिन तक वीर आत्मा ने उस विष के साथ घोर युद्ध किया। अन्तिम समय तक प्रसन्न मुख रहे। सांय पांच बजे तक सभी एकत्र भक्तजनों को आदेश दिया कि मेरे पीछे खड़े हो जाओ। दरवाजे और खिड़कियां खुलवा दीं। पूछा आज कौन सा मास, पक्ष और दिन है ? किसी भक्त ने कहा – महाराज आज कार्तिक मास की अमावस्या का दिन है। यह सुनकर ऋषि ने ऊपर की ओर दृष्टि करके चारों ओर चमत्कारी दृष्टि से गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। संस्कृत में ईश्वर की स्तुति की। आनन्द मग्न होकर गायत्री मन्त्र का पाठ किया। आंखें खोलीं, ओ३म् का उच्चारण किया और कहा – "हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छापूर्ण हो, अद्भुत तेरी लीला है" यह कहकर लम्बी सांस खींची और बाहर निकाल

दी और इहलीला समाप्त कर दीपावली के पर्व पर ज्योतिर्मय की शरण में चले गए। भक्तजन देखते रह गए। गुरुदत्त विद्यार्थी प्रथम् बार ऋषि के दर्शन करने आए थे। वे विज्ञान के छात्र थे। ईश्वर पर विश्वास कुछ कम था। भक्तों के साथ उस महायोगी की लीला देख रहे थे। अपार पीड़ा में भी ऋषि आनन्दमग्न थे। समग्र अन्धकार मिट गया। पूर्ण आस्तिक बन गए। ऋषि भी अपने पीछे दीपमाला का प्रकाश छोड़ गए। जाते–जाते भी एक नास्तिक को आस्तिक बना गए।

ऋषि का सारा जीवन आर्यसमाज को समर्पित रहा। उनकी मृत्यु तक हजारों आर्यसमाजें मुम्बई, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार आदि में स्थापित हो चुकी थीं। लाखों की संख्या में शिक्षित समुदाय उनकी ओर आकृष्ट हो चुका था। जिसने भी ऋषि के मुख से धर्म और वेदों की व्याख्या सुनी, वही आश्चर्यचकित रह गया। उसमें मौलिकता, नवीनता और व्यावहारिकता थी। आर्यसमाज का जन्म वेदों के प्रचार, प्रसार, नारी उत्थान, शिक्षा प्रचार, चरित्र निर्माण, ब्रह्मचर्य और सामाजिक सुधार आदि के लिए हुआ। ऋषि ने मुर्दा जाति को नवजीवन दान दिया। श्रद्धानन्द, लेखराम आदि ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और अपने रक्त से आर्यसमाज को सींचा। आर्यसमाज अपने तप-त्याग और बलिदान से आगे बढ़ा।

ओ देव दयानन्द ! तू एक सचमुच अभिनन्दनीय है। तेरा महान् इतिहास प्रशंसनीय है, तेरे कृत्य वन्दनीय हैं, तेरी सेवाएं अर्चनीय हैं, तेरा जीवन अनुकरणीय है। तेरा तप, त्याग और बलिदान स्पृहणीय है।

–डॉ. गंगा प्रसाद

का एक खजाना है जिसका मूल्य देने पर कोई भी इसे प्राप्त कर सकता है। तो इसका मूल्य क्या है? प्रसन्नता प्राप्ति के दस नियम ही इसका मूल्य है। –

1. अपने शरीर को स्वस्थ रखो । नियम से खाना, नियम से व्यायाम करना, नियम से विश्राम करना और नियमपूर्वक शुद्धि रखना इसके साधन हैं।

2. अपने मन को स्वस्थ रखो। दूसरों का भला सोचो। अपना भी भला सोचो। मन को बलवान बनाने के लिए उपदेश सुनो, स्वाध्याय करो, अच्छी पुस्तकें पढ़ो और अच्छे साथियों का संग करो।

3. मनोरंजन के लिए समय निकालो। हँसी, विनोद, संगीत, खेलकूद आदि मनोरंजन के मुख्य साधन हैं। हास्य-विनोद और कथा-वार्तालाप से मनुष्य की नीरसता दूर होती है और हँसते-मुस्कराते हुए काम करने की शक्ति प्राप्त होती है। खेल-कूद से हमारा अंग-अंग खिल उठता है, मन नाच उठता है।

4. मधुर व्यवहार करो। लोगों के साथ तुम अच्छा व्यवहार करोगे तो लोग तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करेंगे। उससे तुम्हारे मन में ईष्या, द्वेष, उदासी, बदले की भावना उत्पन्न नहीं होगी और प्रसन्नता अवश्य प्राप्त होगी।

5. परोपकार का काम करना। आज ही तुम अनुभव करके देखो कि हजारों रुपये कमाने से उतनी प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती, जितनी किसी दुखिया की सहायता करने

प्रसन्नता पैसे से खरीदी नहीं जा सकती! यदि ऐसा होता तो धनी लोग सबसे अधिक प्रसन्न होते।

प्रसन्नता मन और हृदय की वस्तु है। अतः हृदय के संतोष से ही सच्ची प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है। इसके लिए धन, धरती, उच्च पद, भौतिक वस्तुओं का विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि उनसे क्षणिक सुख तो मिल सकता है, किन्तु हृदय का आनंद नहीं मिल सकता।

जब गर्मियों में तुम्हें सख्त प्यास लगी हो तो तुम्हें सोडावाटर, आइसक्रीम, ठंडी चाय या कॉफी मिल जाये, तब क्या तुम्हारी प्यास बुझ जाएगी और तुम्हें संतोष प्राप्त होगा? नहीं, ठंडे पानी की प्यास, ठंडे पानी से ही बुझेगी। इसी प्रकार प्रसन्नता भी पानी के समान है और उसका स्थान कोई अन्य वस्तु, धन, सोना, महल आदि भौतिक वस्तु नहीं ले सकती।

सच्ची प्रसन्नता तो आदर्श जीवन से आती है। उसका जन्म ऊँचे विचारों और परोपकार से होता है। चोर, डाकू, स्वार्थी, ईर्ष्यालु लोग कभी प्रसन्न नहीं रह सकते। प्रसन्नता एक ऐसी अमूल्य देन है जो हमारे ही शुभ विचारों से मिलती है। थोड़ी-सी प्रसन्नता तब मिलती है जब हम किसी का भार हल्का करते हैं। अधिक प्रसन्नता तब मिलती है जब अधिक लोगों के लिए बहुत अच्छा काम करते हैं।

इस प्रकार प्रसन्नता किसी की जागीर नहीं है। कोई इसे बाँधकर तिजोरी में नहीं रख सकता। यह तो विचारों

8

स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी
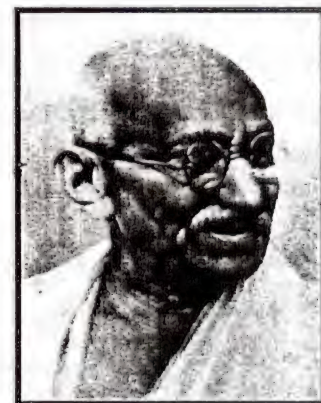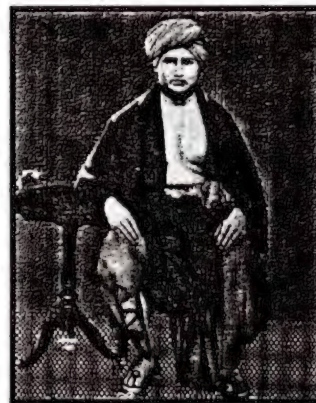
क्या यह प्रकृति का संयोगमात्र था कि इस देश के दो महान् देश-भक्त, समाज सुधारक, चिन्तक एवं जन-नेता गुजरात के काठियावाड़ प्रदेश में जन्मे तथा उन्होंने एक ऐसी वैचारिक क्रांति उत्पन्न की, जो मानव-कल्याण का महत् उद्देश्य रखने के कारण देश की सीमाओं को लांघकर विश्व के विभिन्न देशों में फैल गई। ऐसे पहले देशभक्त, समाज-सुधारक तथा जन-नेता थे–स्वामी दयानन्द, जिनका जन्म सन् 1824 में काठियावाड़ के टंकारा ग्राम में हुआ तथा दूसरे महान् व्यक्ति थे महात्मा गांधी, जिनका जन्म स्वामी दयानन्द का जब सन् 1883 में देहावसान हुआ तब किशोर गांधी कुल 14 वर्ष के थे, लेकिन गांधी की इस किशोरावस्था तक आर्यसमाज की स्थापना और 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रकाशन हो चुका था। इधर गांधी धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे, परन्तु उधर स्वामी दयानन्द की तेजस्विता तथा आर्यसमाज के सुधारवादी आंदोलन

तीव्रता से देश में चारों ओर अपना प्रभाव उत्पन्न करता जा रहा था। गांधी जी इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास करके भारत लौटें और मई 1893 में एक बैरिस्टर की हैसियत से भारतीयों का मुकद्मा लड़ने के लिए दक्षिण अफ्रीका पहुंचने के लगभग एक वर्ष उपरांत, उपलब्ध तथ्यों के अनुसार गांधी जी के मन में आर्य धर्म तथा वेदों की रचना के सम्बन्ध में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने जून, 1894 से कुछ पहले रामचन्द्र भाई को एक धर्म सम्बन्धी प्रश्नावली भेजी थी जिसमें आर्य धर्म तथा वेद के सम्बन्ध में ये प्रश्न भी पूछे गये थे – आर्य धर्म क्या है ? क्या सब भारतीय धर्मों की उत्पत्ति वेदों से ही हुई है ? वेद किसने रचे? क्या वे अनादि हैं ? यदि ऐसा हो तो अनादि का अर्थ क्या है?

महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका पहुंचने के कुछ वर्षों के उपरान्त ही आर्यसमाज के अनेक विद्वान् प्रचारक देश की सीमाओं को लांघकर अन्य देशों में बसे भारतीयों के बीच आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार करने के लिए निकल पड़े। उनमें से एक विद्वान् थे प्रोफेसर परमानन्द जो बाद में भाई परमानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रो. परमानन्द उन दिनों एंग्लो वैदिक कालेज में प्रोफेसर थे और आर्यसमाज की शिक्षाओं का प्रचार करने के उद्देश्य से जुलाई, 1905 में दक्षिण अफ्रीका गए जहां गांधी ने उनका न केवल स्वागत किया बल्कि उनके पक्ष में 'इण्डियन ओपीनियन' में 'प्रोफेसर परमानन्द' शीर्षक से टिप्पणी लिखी और 28 अक्तूबर, 1905 को जोहनिसबर्ग में उन्हें मानपत्र समर्पित किया। महात्मा गांधी ने 26 अगस्त 1905 को 'इण्डियन ओपीनियन' में प्रकाशित अपनी टिप्पणी में आर्यसमाज के बारे में लिखा, 'आर्यसमाज भारत के किसी स्थापित रूढ़िग्रस्त धर्म का प्रतिनिधित्व नहीं करता। यदि हम कहें कि आर्यसमाज एक ऐसा फिर्का है जो अभी

20

महान गुण : प्रसन्नता

'प्रसन्नता' अहा ! कितना सुन्दर शब्द है! खिला हुआ मुख-कमल! चमकती हुई आँखें! हँसते-मुस्कराते हुए लाल-लाल दो होंठ! मोतियों-से दमकते दाँत, नाचते हुए कदम! गाता हुआ गला! मटकते हुए हाथ! ऐसी प्रसन्न-मुद्रा किसी भाग्यशाली को ही नसीब होती है। यही तो सबसे बड़ी चीज है। जिसे प्रसन्नता मिल गई उसे और क्या चाहिये ? उसे सब कुछ मिल गया।

आज से ही हम अपने सुधार की योजना बनायें। हो सकता है, हमसे कई भूलें हो चुकी हों। हम उन्हें दूर करने और अच्छे गुण ग्रहण करने का पक्का निश्चय करें :

1. हम एक डायरी बनाएँ। उसमें हम प्रतिदिन अपने अच्छे और बुरे काम लिखा करें। हमसे जो भूल आज हुई है कल हम उससे बचने का यत्न करें।

2. यदि हमारी कोई भूल स्वयं हमसे नहीं सुधरती तो हम अपने मित्रों, अध्यापकों और माता-पिता से सहायता लें।

3. जो अच्छी बातें हम सुनें या पढ़ें, उन्हें अपनी डायरी में लिख लें, फिर उस पर आचरण करने का यत्न करें।

4. हम अच्छे लड़कों की संगति करें। यदि किसी लड़के को बुरी आदत है तो हम उसकी नकल करने का यत्न कभी नहीं करें।

5. हम अपने दिल और दिमाग को अपने वश में रखें।

6. हम किसी के डर से कोई बुरा काम न करें।

8. हम केवल दंड और डंडे के भय से अच्छे नहीं बनें अपितु जब कोई भी न देखता-सुनता हो तब भी हम अच्छे काम ही करें, बुरे नहीं।

अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष और नये अनुयायी बनाने के लिए उपर्युक्त परिस्थिति तैयार कर रहा है तो इससे उसका यश कम नहीं होता। यह हिन्दू धर्म में सुधार का प्रतीक है।' महात्मा गांधी ने इसी टिप्पणी में प्रो. परमानंद की प्रशंसा में लिखा, 'उसने (आर्यसमाज ने) सच्चे देशभक्त और बहुत से आत्मत्यागी शिक्षक उत्पन्न किये हैं । कुछ महीने पूर्व भारत में जो भयंकर भूकम्प आया था उसमें भी आर्यसमाज उत्तम कार्य कर चुका है। प्रो. परमानन्द कार्यकर्ताओं के उसी समाज से सम्बन्धित है, और इसीलिए दक्षिण अफ्रिका के भारतवासियों से उनको हार्दिक स्वागत पाने का हक है। निश्चय ही, हम लोगों के बीच विद्वान् और सुसंस्कृत भारतीय बहुत नहीं आ सकते।' इसके पश्चात् 28 अक्तूबर, 1905 को प्रो. परमानन्द का जोहानिसबर्ग में सार्वजनिक स्वागत किया और जो मानपत्र दिया गया उस पर महात्मा गांधी के भी हस्ताक्षर थे।

महात्मा गांधी पर स्वामी दयानन्द के जीवन तथा चरित्र और आर्यसमाज के निष्ठावान एवं त्यागी कार्यकर्त्ताओं का गहरा प्रभाव पड़ा। गांधी जी सनातनी थे, लेकिन उन्होंने आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के महत्व एवं प्रभाव को स्वीकार करने में कतई संकोच नहीं किया। महात्मा गांधी ने 2 जनवरी, 1916 को सूरत आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया, 'आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द एक असाधारण पुरुष हुए हैं और उनका मुझ पर प्रभाव पड़ा है यह मुझे स्वीकार करना चाहिए।' महात्मा गांधी को जब भी अवसर मिला, तब तब उन्होंने स्वामी दयानन्द का गुणगान किया। उन्होंने स्वामी दयानन्द को 'महान् आध्यात्मिक गुरु' (17 अप्रैल 1918), लाखों नर-नारियों के हृदयों पर प्रभाव तथा असंख्य व्यक्तियों के चरित्र को

गढ़ने वाले (22 दिसम्बर, 1916), 'अग्रस्थान पर स्थित धर्मगुरु' (12 जनवरी, 1920), 'धर्म को सुगंधित रखकर बुरी रूढ़ियों को तोड़ने एवं धर्म की रक्षा करने वाले (30 जून 1929) 'बलवान चरित्र एवं महान् सेवक' (8 अगस्त 1929) तथा 'हिन्दू धर्म के महानतम सुधारक' (15 अक्तूबर, 1933) के रूप में स्वीकार करते हुए उनके योगदान की सराहना की।

महात्मा गांधी ने स्वामी दयानन्द को ईसा मसीह, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकराचार्य, रामकृष्ण आदि की परम्परा में रखकर देखा, और लिखा कि ये ऐसे महापुरुष थे जिनके अवतरित होने से विश्व में नैतिकता की वृद्धि हुई, धर्म रूढ़ियों से मुक्त हुआ और उसकी सुगंध चारों ओर फैली। 10 जुलाई, 1924 को 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी ने स्वामी दयानन्द के योगदान का उल्लेख करते हुए लिखा, 'मैंने आर्यसमाज के बारे में जो राय प्रकाशित की है, उसके बावजूद मैं आर्यसमाज के संस्थापक का एक नम्र प्रशंसक होने का दावा करता हूं। उन्होंने हिन्दू समाज को भ्रष्ट करने वाली कितनी ही कुप्रथाओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उन्होंने संस्कृत विद्या के पठन-पाठन की रुचि बढ़ाई। उन्होंने अन्धविश्वास को ललकारा। उन्होंने अपने शुद्ध आचरण से अपने समाज के आचरण को ऊंचा उठाया। उन्होंने निर्भयता सिखाई और कितने ही निराश युवकों में नई आशा का संचार किया। मैं उनकी राष्ट्रसेवा के अनेक कार्यों से भी बेखबर नहीं हूं और 10 मार्च, 1929 को रंगून में आर्यसमाजियों के समकक्ष गांधी जी ने स्वामी दयानन्द को राष्ट्रनायक के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहा – 'आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द ने हिन्दू समाज की जो सेवा की है वह सदा अमर रहेगी। महर्षि ने पुकार-पुकार कर हिन्दू समाज के आगे ब्रह्मचर्य का मंत्र रखा,

हर समय हमारे साथ नहीं रह सकते। हमारे अध्यापक प्रत्येक स्थान पर हमें नहीं बता सकते 'ऐसा करो', 'वैसा न करो।' अतः भले-बुरे का अंतिम निर्णय हमें स्वयं करना पड़ता है। इसलिए हम अपना चरित्र स्वयं बनाते हैं। क्योंकि हम अपने मालिक आप हैं। हम चाहें तो अपने-आपको ऊँचा उठा सकते हैं। हम चाहें तो अपने-आपको नीचे गिरा सकते हैं।

भला कौन चाहता है कि हम बुरे बनें ? नहीं, ऐसा कोई भी नहीं चाहता। कोई भी मनुष्य जान-बूझकर बुरी आदतों में नहीं पड़ना चाहता। फिर भी हम बुराई के शिकार हो ही जाते हैं। कैसे ? जैसे हम साफ कपड़े पहनकर अपने घर से निकलते हैं। हम नहीं चाहते कि वह गन्दे हों या उन पर धब्बे लगें या कीचड़ उछले। किन्तु दुनियां के हर रास्ते पर धूल भी है, गंदगी भी हैं । हमारे न चाहते हुए भी इनके संग से हमारे कपड़े थोड़े-बहुत गंदे हो ही जाते हैं। फिर उन्हें धोना और साफ करना आवश्यक होता है, ठीक उसी प्रकार बचपन में हम सब भोले-भाले, सीधे-सादे, सच्चे और अच्छे बच्चे होते हैं। किन्तु आस-पड़ोस के कुछ भले, कुछ बुरे प्रभाव हम पर पड़ते हैं। इनमें से बुरे प्रभावों को हमें उसी प्रकार धोना होगा जिस प्रकार हम कपड़ों को धोते हैं। इसी का नाम चरित्र-निर्माण है। इसी से हम अपना सुधार करते हैं।

परिमाणतः उनकी आदतें, उनका स्वभाव और उनका चरित्र बुरा बन जाता है। अतः अच्छा चरित्र बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं :

1. **अच्छे लोगों की संगति में रहना और बुरे वातावरण से बचना**
2. **बुरी आदतों को त्याग देना।**
3. **अच्छे गुणों को ग्रहण करना।**

चरित्र-निर्माण का यह कार्य बचपन से ही आरंभ हो जाता है। जन्म से लेकर तीन वर्ष तक तो माता-पिता और बड़े बहन-भाई बच्चे को सिखाते हैं – क्या अच्छा है, क्या बुरा है। साफ रहो, गंदगी मत करो आदि। इसके पश्चात् अपने चरित्र का आधा भाग बालक स्वयं बनाने लगता है और आधा भाग माता-पिता, अध्यापक, पड़ोसी, साथी आदि सारे मिलकर बनाते हैं। बालक को कुछ माता-पिता सिखाते हैं, कुछ अध्यापक पढ़ाते हैं। इन्हें तो विद्यार्थी पक्का सत्य मानकर ग्रहण कर लेता है।

किन्तु इनके अतिरिक्त भी हमारे आस-पास बहुत बड़ी दुनियां है। हम अपने साथियों को कई तरह की बातें करते हुए देखते हैं। हमारे पड़ोस में भाँति-भाँति की घटनाएँ घटती हैं। घर से बाहर हम रंग-रंग के दृश्य देखते हैं और कई तरह की बातें सुनते हैं। यह सब कुछ हम ग्रहण नहीं करते। उनमें से हमें चुनाव करना पड़ता है – 'कौन-सी बात हमारे लिए अच्छी है, कौन-सी बुरी?' हमारे माता-पिता

भारतीय संस्कृति के प्रचार पर जोर दिया और वेदों के महत्व की ओर सारे समाज का ध्यान खींचा। ऋषि की यह सेवा भूलने योग्य नहीं है, कोई उसे भूल नहीं सकता।

महात्मा गांधी द्वारा स्वामी जी की इन प्रशस्तियों से यह न समझ लेना चाहिए कि उन्होंने आर्यसमाज, उनके संस्थापक, उनकी महान् कृति 'सत्यार्थप्रकाश' तथा आर्यसमाजियों के क्रिया-कलापों पर आलोचनात्मक दृष्टि नहीं डाली। गांधी जी का यह स्वभाव था कि वह बुद्धि से सभी को तोलते थे और स्वामी दयानन्द की शिक्षानुसार सत्य के साथ असत्य को भी पहचानने की चेष्टा करते थे। चाहे कोई उनके मत से सहमत हो या न हो। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद आर्यसमाज और उसके तत्कालीन नेताओं से उनके गहरे सम्बन्ध बने। स्वामी श्रद्धानन्द के तो वह बड़े प्रशंसक थे और उन्होंने अपने दो बच्चों को गुरुकुल कांगड़ी भेजा। छगनलाल गांधी के पुत्र प्रभुदास गांधी का जब अक्तूबर 1933 में एक आर्यसमाजी कुल की कन्या से विवाह हुआ, तब भी उन्होंने उसका हृदय से स्वागत किया। साथ ही देश के किसी भी भू-भाग से जब भी किसी आर्यसमाजी संस्था ने अध्यक्षता, उद्घाटन आदि के लिए बुलाया उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया, लेकिन इस आत्मीयता से उनकी चिंतन प्रक्रिया पर कोई असर नहीं पड़ा। आर्यसमाज के अपने सम्बन्धों के आधार पर वह जिस निष्कर्ष पर पहुंचे थे, उनमें से कुछ आर्यसमाजियों को प्रिय नहीं हो सकते थे। महात्मा गांधी ने कई बार इस वाद-विवाद से स्वयं को बचा ले जाने का प्रयत्न भी किया। आर्यसमाज को अधिक उपयोगी एवं लोकप्रिय बनाने के प्रश्न को (2 जनवरी, 1916) उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि मै अपने गुरु गोखले के निर्देशानुसार किसी के साथ वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहता

और इसी प्रकार एक आर्यसमाजी के आरोपों का 'यंग इण्डिया' के 14 अक्तूबर, 1926 के अंक में उत्तर देते हुए लिखा – स्वामी दयानन्द विषयक झगड़े में मुझे नहीं पड़ना चाहिए।' लेकिन महात्मा गांधी, जैसा कि उसका स्वभाव था, अपने विचारों को अभिव्यक्त किये बगैर रह नहीं सकते थे, चाहे उनका कितना भी विरोध क्यों न हो।

महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका के समय से ही आर्यसमाज के सिद्धान्तों एवं क्रिया-कलापों में कुछ कमियां देखते रहे थे और यदा कदा एक-दो बातों का उल्लेख भी कर देते थे, लेकिन उन्होंने 'यंग इंडिया' के 29 मई, 1924 के अंक में हिन्दू मुस्लिम तनाव – 'कारण और उपचार' लेख लिखकर पहली बार खुलकर आर्यसमाज की आलोचना की। महात्मा गांधी की कुल आपत्तियों का सार था कि आर्य धर्म या आर्यसमाज से 'हिन्दू धर्म' शब्द ज्यादा अच्छा है, आर्यसमाज हिन्दू धर्म का ही अंग है तथा असहिष्णुता, कुवचन, चिड़चिड़ापन, वाद-विवादी स्वभाव, हिन्दू धर्म को संकुचित बनाने की चेष्टा, शुद्धि आदि आर्यसमाज की ऐसी दुर्बलताएं हैं जिन्हें दूर किया जाना आवश्यक है।

महात्मा गांधी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि आलोचना का अधिकार रखने के बावजूद उन्होंने देश के लिए स्वामी दयानन्द के योगदान और आर्यसमाज की आवश्यकता को समझ लिया था, और इसीलिए वह उसे दोषमुक्त करके एक जीवन्त संस्था के रूप में देखना चाहते थे।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका

भक्त उन बालकों को पकड़ लाये और स्वामीजी के सामने उन्हें खड़ा करके बोले – "स्वामीजी! इन्होंने आपको पत्थर मारे हैं, अतः आप ही इन्हें दण्ड दें।"

स्वामीजी ने दण्ड देने के बदले बच्चों को प्यार किया और उन्हें खाने के लिए लड्डू दिये। यह देखकर भक्त लोग हैरान हुए और पूछने लगे – "स्वामीजी ! ये बालक दण्ड के अधिकारी हैं। फिर आप इन्हें मिठाई क्यों दे रहे हैं?"

स्वामीजी बोले – "यदि कुछ लोग बुरी बात करें तो उनकी देखा-देखी हम भी बुराई न करें। फिर सच्चाई यह है कि बच्चे तो निरपराध हैं। इन्हें बहकाया और उकसाया गया है।"

स्वामीजी के इस उँचे चरित्र को देखकर न केवल बच्चे रो पड़े और क्षमा माँगने लगे अपितु पाखंडियों के दिल भी बदल गये और वे स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े। इस प्रकार चरित्र में बड़ी शक्ति है।

अपना चरित्र बनाना हमारे हाथ की बात है। कोई भी बालक अच्छे या बुरे चरित्र के साथ पैदा नहीं होता। हाँ, कुछ बालकों को अच्छी परिस्थितियाँ मिलती हैं। उनके प्रभाव से उनकी आदतें उनका स्वभाव और उनका चरित्र अच्छा बन जाता है। कुछ बालक बुरी परिस्थितियों में पड़ जाते हैं। निस्संदेह उन पर दिन-रात बुरे प्रभाव पड़ते हैं। इससे उनके दिल-दिमाग में बुरी आदतें फँस जाती हैं।

19

महान् गुण : चरित्रवान

एक स्थान पर स्वामी दयानन्द सरस्वती उपदेश दे रहे थे। उन्होंने भक्तों को समझाया, "कुछ लोग धर्म के नाम पर अपना उल्लू सीधा करते और लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं। ऐसे पाखंडियों के चुंगल में नहीं फँसना चाहिए।"

ऐसे उपदेशों से जनता होशियार हो गई। वे पाखंडियों से बचने लगे। इससे कपटी लोग नाराज हो गये और उन्होंने कुछ बालकों को बहकाया कि वे स्वामीजी पर पत्थर फेंकें। बालकों ने वैसा ही किया। सभा में उपस्थित

9

सीता

भारतीय इतिहास में सीता एक आदर्श नारी मानी जाती है। आज से लाखों साल पहले की बात है विदेहराज जनक के घर एक अनुपम बालिका ने जन्म लिया, जिसका नाम सीता रखा गया।

वाल्मीकि रामायण में सीता की प्रशंसा करते हुए जनक ने स्वयं कहा था, "मुझसे पैदा हुई सीता जनक-वंश में अपने चरित्र से यश पायेगी।" उसके विवाह के समय श्रीराम को महाराज जनक बोले "इयं सीता मम सुता" यह सीता मेरी पुत्री है।

सीता विलक्षण सुन्दरी थी। उसे देखकर शूपर्णखा ने वन में कहा था कि सीता जैसी सुन्दर रूप वाली नारी न देवी, न गन्धर्वी, न यक्षी, न किन्नरी है। मैंने ऐसी स्त्री अब तक धरती पर नहीं देखी, पर अनन्य सुन्दरी होते हुए भी उसे अपनी जाति तथा कुल का अभिमान था। वह पतिव्रता नारी थी। इसी कारण श्रीराम के बार-बार मना करने पर भी वे उनके साथ वन को गई और उनके सुख-दुख में अपना सुख-दुख समझती रहीं। जब रावण उसे चुराकर लंका में ले गया और अशोक वाटिका में बन्दिनी बना लिया गया, तो उसने रावण द्वारा समझाने-बुझाने के लिए भेजी गयी राक्षसियों को साफ-साफ कह दिया, "मेरे जैसी मानवी स्त्री

राक्षस की पत्नी कभी नहीं हो सकती। तुम सब मुझे चाहे काटकर खा जाओ, पर मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी।

जनक महाराज के घर लाड़-प्यार से पाली-पोसी गई सीता ने वन के घोर कष्टों को, विपदाओं को भी वरदान समझा, शूलों को फूल मानकर स्वागत किया।

18 वर्ष की आयु में श्रीराम के साथ सीता का विवाह हुआ। 14 वर्ष का वनवास राजकुमार राम को मिला था, सीता को नहीं। वह चाहतीं तो अयोध्या के राजमहलों में रहकर चैन की बंशी बजातीं, पर उसने अपने धर्म का पालन किया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने उसके मुख से नारी-धर्म के विषय में कैसी शिक्षाप्रद चौपाई कहलाई है :

प्राणनाथ तुम बिनु जगमाहीं,

मो कहँ सुखद कतउँ कोउ नाहीं।

जिय बिनु देह, नदी बिनु वारी,

तैसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी ।।

सीता आदर्श पतिव्रता होने के साथ धर्म-कर्म, यज्ञ-संध्या आदि का दृढ़ता से पालन करने वाली धर्मपरायण नारी थी। वनवास में रावण द्वारा अशोक वाटिका में रखे जाने पर भी वे इन नियमों का पालन करती रहीं।

महाबली हनुमान जब सागर पार करके उसे खोजते हुए लंका में वाटिका के पास पहुंचे, तो उन्होंने विचार किया, 'संध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्याति जानकी। नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी।'

समय में तुमने पढ़ाई में अपनी कमजोरी दूर न की तो वार्षिक परीक्षा में तुम अनुत्तीर्ण हो जाओगे। इससे निर्धन होने के कारण अब जो छात्रवृति तुम्हें विद्यालय से मिलती है, वह भी बन्द हो जाएगी। अतः तुम अगले वर्ष भी पढ़ नहीं सकोगे। अभी समय है, तुम अपनी कमजोरी दूर करके उत्तीर्ण हो सकते हो।''

ओमप्रकाश कक्षा का सबसे योग्य विद्यार्थी था। उसे विनय का सारा हाल पता था। अतः उसने विनय के पास आकर कहा ''विनय! चिन्ता मत करो। यदि तुम परिश्रम करने को तैयार हो तो मैं तुम्हें पढ़ाया करूँगा। मुझे विश्वास है कि दो मास में तुम अपनी कमजोरी अवश्य दूर कर लोगे।'' बस, ओमप्रकाश ने पढ़ाने में सहायता की और विनय ने परिश्रम किया। वार्षिक परीक्षा में विनय उत्तीर्ण हो गया।

इस प्रकार जिनके पास विद्या है वे विद्या से दूसरों की सहायता करते हैं।

दूसरों की सहायता करने के अवसर अनेक हैं। हमें चाहिए कि जब भी हम दूसरों को कष्ट में देखें, उनकी सहायता करने का यत्न करें।

दूसरों की सहायता करने के साथ-2 एक नियम यह भी है कि हम अपनी सहायता स्वयं भी करें। हम दूसरों पर भार न बनें और अपने सब काम स्वयं करने की आदत डालें। इससे भी दूसरों की सहायता अपने-आप हो जाएगी, क्योंकि तुम्हारे माता-पिता और मित्र आदि तुम्हारी ओर से निश्चिन्त होकर ऐसे लोगों की मदद के लिए समय निकाल सकेंगे जिन्हें तुमसे अधिक मदद की जरूरत है।

कष्ट की चिन्ता न थी। उसे प्रसन्नता थी कि उसने एक डूबते हुए बालक की सहायता करके उसे बचा लिया है।

इस प्रकार जिनके शरीर में बल है वे अपने बल से दूसरों की सहायता करते हैं।

दूसरी घटना

राकेश एक विद्यालय में पढ़ता-था। वह योग्य किन्तु निर्धन बालक था। आठवीं का परिणाम निकला तो राकेश कक्षा में द्वितीय था। सब सफल छात्र खुशियाँ मना रहे थे। लक्ष्मण ने देखा कि राकेश उदास है। उसकी आँखें सूजी हुई हैं। शायद वह रोता भी रहा है। लक्ष्मण ने पूछा—"राकेश! तुम्हें तो हमसे अधिक प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि तुम कक्षा में द्वितीय रहे हो, किन्तु तुम रोते क्यों हो?"

राकेश बोला – "मेरे पिताजी निर्धन और रोगी हैं। वे मुझे आगे नहीं पढ़ा सकते। इसलिए मुझे अपनी सफलता की खुशी नहीं।"

लक्ष्मण धनवान पिता का पुत्र था। उसे जेब खर्च के लिए काफी पैसे मिलते थे उसने अपने खर्चों में कटौती कर के राकेश की अर्थिक सहायता करनी शुरू कर दी जिससे उसका निर्धन साथी आगे पढ़ने में समर्थ हो गया।

इस प्रकार जिनके पास धन है, वह धन से दूसरों की सहायता करते हैं।

तीसरी घटना

विनय कुमार कक्षा में सबसे कमजोर छात्र था।

एक दिन अध्यापक जी ने उसे बुलाकर कहा – "विनय! वार्षिक परीक्षा में अब केवल दो मास रह गए हैं। यदि इस

सायंकाल संन्ध्या करने की इच्छा से इस स्वच्छ जल वाली नदी के तट पर जानकी अवश्य जाएगी।

हिंदू समाज में स्त्री को अबला कहा जाता है। पर सीता सबला थी। रावण द्वारा डराये-धमकाये जाने पर उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया –

तू गीदड़ मुझ सम दुर्लभ सिंही को क्यों चाहे प्राप्त करूं।
क्या स्पर्श करेगा सूर्य प्रभा का, चाह रहा या स्वयं गरूं।
भूखे, तेजस्वी सिंह भयंकर भुजगानन से दाढ़ फाड़।
अथवा मन्दर पर्वत को कर से उठा, सोचता लूं उखाड़।
पी कालकूट विष सकुशल जीवित रह पाऊं क्या हो सकता।
श्रीराम बसे है मम उर में, फिर तू कैसे है छू सकता ।

अन्त में हम सीता के उस विशुद्ध मातृरूप के दर्शन करते हैं, जिसके द्वारा लव-कुश जैसे पराक्रमी सिंह के समान बालकों ने वाल्मीकीय रामायण को कंठस्थ कर और अतुल पराक्रम का परिचय देकर छात्र धर्म की धाक बिठाकर संसार को अपने यशोगान से गुंजा दिया। वह सचमुच आर्य गुण-कर्म स्वभाव की माता थी।

सीता का चरित्र आदि से लेकर अन्त तक एक आदर्श भारतीय नारी का चरित्र है। उनके चरित्र में तप-त्याग-तपस्या एवं कर्त्तव्य परायणता की भावना पूर्णतया मिलती है। उन्होंने सुख व भोग विलास का जीवन त्याग कर श्रीरामचन्द्र जी के साथ तपस्वी जीवन व्यतीत करने का व्रत किया। सीता चाहती तो राजमहलों में सुख और आराम का जीवन बिता सकती थी। वनवास उनके पति को मिला था न कि उन्हें। उनकी त्याग-भावना ने उन्हें सभी

का वन्दनीय बना दिया। उन्होंने अपने व्यवहार से सभी परिवार जनों के हृदय को जीत लिया। सभी के साथ-योग्य व्यवहार ने उन्हें सर्वप्रिय बना दिया।

सीता संस्कारशील नारी थीं। उनका जीवन धार्मिक और सात्विक था। रावण ने अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए। लंकापति की रानी बनने के लिए उनके मन में जरा भी लोभ नहीं आया। उनके मन ने रावण की कोई भी बात स्वीकार नहीं की। यह उनका आदर्श युग-युग तक भोगी विलासी नारियों को प्रेरणा देता रहेगा। उन्होंने अपने हृदय में श्रीराम के अतिरिक्त किसी को देखा ही नहीं । उनका पतिव्रत धर्म अपने में पूर्ण था। उनका जीवन आदर्श प्रतीक है।

आज की नारी सीता के चरित्र से बहुत कुछ सीख सकती हैं। उनके चरित्र में लोक-मर्यादा, शील, सदाचार, धार्मिकता, पवित्रता और पतिव्रत धर्मगुण विद्यमान थे। यही गुण आज की नारी को आवश्यक हैं। इन्हीं गुणों से यह देवी और पूजनीय बन सकती है।

डॉ. महेश वेदालंकार

18

महान् गुणः सहायता करना

पहली घटना

एक बार गंगा नदी पर बैसाखी का मेला लगा। हजारों लोग घाटों पर स्नान कर रहे थे। अचानक एक बालक नहाते-नहाते गहरे पानी में चला गया। पानी की धारा तेज थी। बालक गंगा में बहने लगा। उसने शोर मचाया – "बचाओ! बचाओ!!"

कई लोगों ने उसे डूबते हुए देखा, पर गहरे पानी में जाने में कोई तैयार न हुआ। उस समय गुरूकुल का छात्र विद्याधर भी किनारे पर खड़ा था। उसने अपने प्राणों की चिन्ता न की और गंगा नदी में छलाँग लगा दी। वह बड़ी कठिनाई से बालक को किनारे तक ले आया। बालक बच गया, किन्तु विद्याधर को कई चोटें आईं। किन्तु उसे अपने

कार्यकुशल बनने के अनेक लाभ हैं। कुशल कार्यकर्त्ता की सभी प्रशंसा करते हैं और वह प्रसिद्ध हो जाता है। अतः कुशल व्यक्ति को उन्नति के अवसर मिलते हैं। काम पूरा और सुन्दर होने पर स्वयं को भी प्रसन्नता होती है।

कार्यकुशल बनने के नियम

(क) कार्य को आरम्भ कर पूरा करें, बीच में ही अधूरा न छोड़ दें।

(ख) जिस त्रुटि को जानते हैं और दूर कर सकते हैं, उसे अवश्य दूर कर दें।

(ग) जिस त्रुटि को हम जानते हैं किन्तु स्वयं दूर नहीं कर सकते, उसके विषय में हम अपने साथियों व दूसरों की सहायता लेकर दूर करें।

(घ) तब तक कार्य को करते रहें, जब तक हमें स्वयं सन्तोष न हो जाए।

10

महापुरुषों के जीवन–चरित्र
छत्रपति शिवाजी

शिवाजी का जन्म शाहजी के घर जीजाबाई से सन् 1627 में हुआ। शाहजी बीजापुर के मुसलमान बादशाह के राज-कर्मचारी तथा सुयोग्य सैनिक थे। जीजाबाई यहाँ के एक उच्च सेनापति की अति सुंदर कन्या थी। शिवाजी का जन्म शिवनेर दुर्ग में हुआ। जब वे कुछ बड़े हुए तो इन्हें दादा कोंडदेव की संरक्षता में पूना भेज दिया गया। वहाँ पर रहकर इन्होंने सैनिक-शिक्षा प्राप्त की।

शिवाजी की माता जीजाबाई स्वाभिमानी एवं क्षत्रियोचित गुणों का भंडार थीं। वह अपने पुत्र को देशभक्त वीरों की कथाएँ सुनाया करती थीं। इन कथाओं के माध्यम से माता ने शिवाजी के हृदय में वीरता के भाव कूट-कूटकर भर दिए। कुछ समय पश्चात्

शिवाजी मावल प्रदेश में चले गए। यही प्रदेश इनकी बालक्रीड़ाओं का केंद्र रहा।

माता की शिक्षा एवं देश की स्थिति की जानकारी से शिवाजी के हृदय में हिंदुत्व का अभिमान जाग्रत होने लगा। अत्याचारी धर्मांध मुसलमान शासकों को वे घृणा की दृष्टि से देखने लगे। इसका प्रमाण यह है कि एक बार वे अपने पिता के साथ बीजापुर नरेश के दरबार में गए और नवाब को झुककर सलाम न किया। इस पर नवाब की त्यौरियाँ चढ़ गईं। तब राजकर्मचारी ने नवाब को यह कहकर शांत किया कि –''शहनशाह! यह बालक, इसे अभी शाही रीतिरिवाज का पता नहीं है।''

बीजापुर के नवाब ने खुले बाजार में गौमांस बेचने पर रोक लगाई हुई थी। एक बार शिवाजी ने वहाँ एक कसाई को गौमांस बेचते देख लिया। उनके क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने तुरंत ही तलवार निकाली और उसे इस दुःसाहस का दंड देकर सदा की नींद सुला दिया। अपने आपको नवाब के कोप से बचाने के लिए वे मावल चले गए।

मावल पहुँचकर शिवाजी ने वहाँ के हिंदू नवयुवकों को संगठित किया और मुसलमान रियासतों के दुर्गों पर आक्रमण करने लगे। इन आक्रमणों से छोटी-छोटी रियासतों के पाँव उखड़ने लगे और कई दुर्ग इनके अधिकार में आ गए। सन् 1654 में शिवाजी ने

2- विशेषज्ञ बनो - प्रसिद्ध है कि रोना और गाना सब जानते हैं, पर असली गाना तो गवैया ही गा सकता है क्योंकि उसने गाना विशेष रूप से सीखा है। अतः वह उसका विशेषज्ञ बन गया है। किसी कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करना ही विशेषज्ञ बनना है, जैसे – पढ़ाने का विशेषज्ञ अध्यापक, चिकित्सा का विशेषज्ञ डॉक्टर, मशीन आदि का विशेषज्ञ इंजीनियर, लिखने का विशेषज्ञ लेखक, युद्ध का विशेषज्ञ सैनिक या सेनापति। जीवन में कम से कम एक कार्य का विशेषज्ञ तो अवश्य बनना चाहिए। यह सच है कि हम प्रत्येक कार्य के विशेषज्ञ नहीं बन सकते, किन्तु हमारा यत्न हो कि जिस काम को भी हाथ में लें उसे अपनी योग्यता, जानकारी और शक्ति के अनुसार अच्छे ढंग से करें। उदाहरण के लिए हमें विद्यालय के बाग में क्यारियाँ बनाने के लिए कहा जाता है। सम्भव है, हम कुशल माली जैसी क्यारियाँ न बना सकें। पर हम इतना तो अवश्य कर सकते हैं कि सब क्यारियाँ लम्बाई-चौड़ाई में समान हों, उनमें गहरी खुदाई की गई हो, घास-पत्थर निकाल दिए जाएँ, ढेले तोड-फोड़ दिए जाएँ, मिट्टी भुरभुरी हो और समतल बिछा दी जाए। इस प्रकार छोटी-मोटी बातें बिना सीखे भी मनुष्य स्वयं सोच-समझकर कर सकता है। इसके लिए कार्यकुशलता का एक ही सुनहरी नियम है कि प्रत्येक कार्य सुन्दर ढंग से और योजना बनाकर किया जाए।

दाईं आँख और अपना साधन अर्थात् तीर की नोक दिखाई दे रही है। इसके अतिरिक्त इस समय मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा।''

गुरु ने उत्तर से प्रसन्न होकर कहा – ''शिष्यो ! कार्यकुशलता इसी का नाम है कि हमारा ध्यान सब ओर से हटकर केवल दो बातों पर केन्द्रित हो जाए – अपने लक्ष्य और अपने साधन पर । इसी का नाम एकाग्रता है। यही सफलता की कुंजी है।''

गुरु द्रोण का संकेत पाकर अर्जुन ने जो तीर चलाया वह ठीक लक्ष्य पर लगा – मछली की आँख बिंध गई। यही अर्जुन आगे चलकर द्रोण के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ धनुषधारी सिद्ध हुआ।

गुरु द्रोणाचार्य की उपरोक्त शिक्षा केवल अर्जुन के लिए ही नहीं थी, वह उन सबके लिए है जो कार्य में सफल होना चाहते हैं। यह उपदेश केवल मछली की आंख बेधने के लिए ही नहीं था, अपितु प्रत्येक कार्य की सिद्धि का यही एक मूल मंत्र है – कार्यकुशलता! कार्यकुशल बनने के लिए निम्नलिखित दो बातों की आवश्यकता है :

1- लग्न में मग्न - ध्यान देकर काम करो। कक्षा में अध्यापक पढ़ा रहे हैं तो ध्यान से सुनो और समझो। घर में लिखने का काम कर रहे हो तो शेष सब कुछ भूलकर अपनी सारी बुद्धि, अपनी सारी शक्ति और अपना सारा उत्साह लिखने में लगा दो। लिखने में लीन हो जाओ, फिर देखो तुम्हारे उत्तर शीघ्र और शुद्ध लिखे जाएँगे।

अपने शौर्य प्रताप तथा राजनीतिक सूझबूझ के बल पर स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली।

एक दिन शिवाजी के महल में इनके गुरू महात्मा समर्थ रामदास जी भिक्षा माँगने आए तो शिवाजी ने अपना समस्त राज्य उन्हें भिक्षा में दे दिया। समर्थ रामदास ने राज्यग्रहण कर के उसके संचालन का पूर्ण भार इन्हीं पर छोड़ दिया। किस प्रकार राज्य में आर्य मर्यादाओं का पालन होना चाहिए, इस उद्देश्य के प्रति अब वे पूर्ण व्रती बन गये। तभी से इनके राज्य का झंडा 'भगवा' बन गया। राज्य व्यवस्था और संचालन में वे समर्थ गुरु रामदास की आज्ञाओं का पालन करते थे। उनसे राजनीतिक सम्मतियाँ तथा प्रेरणा प्राप्त किया करते थे।

शिवाजी शत्रुओं की चालों से सुपरिचित थे और उनकी चालों को विफल बनाना इनके लिए बाएँ हाथ का खेल था। बीजापुर के शासक ने अपने सेनापति अफजल खाँ को आज्ञा दी कि वह किसी भी छल से शिवाजी को पकड़ ले या उसकी हत्या कर दे। शिवाजी को बीजापुर नवाब की इस आज्ञा का पता चल गया। उन्होंने तुरंत पंडित गोपीनाथ द्वारा अफजल खाँ को एकांत में मिलकर आपस में वैमनस्य दूर करने को कहा। स्वयं वे उसके षड्यंत्र को विफल बनाने को तैयार हो गए। 10 दिसंबर 1658 को प्रतापगढ़ के किले में बातचीत का समय निश्चित किया गया।

माँ का आशीर्वाद लेकर शिवाजी वहाँ यथासमय पहुँच गए। उनके साथ चोटी के योद्धा कन्होंजी, नेनाजी पालकर तथा पत्र पिंगले थे। अफजल खाँ ने मिलते ही तलवार का वार कर दिया। शिवाजी पहले ही से लोहे की टोपी और कवच पहने हुए थे। उसका वार विफल होते ही शिवाजी ने बिछुआ नामक शस्त्र उसके पेट में घोंप दिया तथा उसकी आँतें खींच लीं। अफजल खाँ के मरते ही उसकी सेना भी भाग गई। यह विजय उनकी सूझ-बूझ का परिणाम था।

शाइस्ता खाँ को हराने में भी शिवाजी ने ऐसी ही सूझ-बूझ अपनाई। शाइस्ता खाँ औरंगजेब का मामा था। उसने पूना पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। पूना शिवाजी के बाल्यकाल की क्रीड़ा-भूमि थी। वे इस घटना को सहन न कर सके। एक रात वे सैनिकों की बारात बनाकर बाजे-गाजे के साथ नगर में घुस गए। किसी भी सिपाही को शिवाजी के आने का तनिक भी संदेह न हुआ। आधी रात ढल चुकी थी। शाइस्ता खाँ महल में सो रहा था। शिवाजी ने अचानक भयानक आक्रमण कर दिया। उन्होंने शत्रु-पक्ष के सैकड़ों सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। शाइस्ता खाँ खिड़की से छलाँग लगाकर प्राण बचा कर भाग निकला, परंतु उसके हाथ की अंगुलियाँ शिवाजी की तलवार के वार से कट गईं। दुर्ग पर अधिकार हो गया। इस घटना को

17

महान् गुण : कार्यकुशलता

एक दिन गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की कार्यकुशलता की परीक्षा लेनी चाही। सौ कौरवों और पाँचों पाण्डवों को बुलाया गया। गुरू ने एक पेड़ पर एक खिलौना मछली टँगवा दी जिसकी दाईं आँख को तीर का निशाना बनाना था। तीर चलाने का आदेश देने से पहले गुरु ने सबसे पूछा – "तुम्हें सामने क्या-क्या दिखाई दे रहा है?"

एक सौ चार शिष्यों ने लगभग एक ही उत्तर दिया – "हमें पेड़ भी दिखाई देता है, सैकड़ों शाखाएँ भी, लाखों पत्ते भी, पेड़ के पीछे नीला आकाश भी, आकाश में उड़ते हुए पक्षी भी, और कोई भी निशाना नहीं लगा पाया क्योंकि कोई भी निशाना लगाने के योग्य न था।

सबसे अन्त में अर्जुन की बारी थी। उसने निराला उत्तर दिया–"गुरुजी! मुझे केवल अपना लक्ष्य अर्थात् मछली की

7. यदि ईश्वर, जीव और प्रकृति को नहीं बना सकता तो वह सर्वशक्तिमान् कैसे है ?

ईश्वर सर्वशक्तिमान है। किन्तु सर्वशक्तिमान् का अर्थ यह कदापि नहीं कि वह सब कुछ कर सकता है। सर्वशक्तिमान् का अर्थ होता है – जिसे अपने कार्य करने में किसी की सहायता की आवश्यकता न हो। ईश्वर अपने कार्य अपने आप करता है और किसी से सहायता नहीं लेता है, इसीलिए वह सर्वशक्तिमान् है।

9. ईश्वर के अपने कौन से कार्य हैं ?

ईश्वर के चार कार्य हैं – सृष्टि को बनाना, सृष्टि का पालन-पोषण करना और समय आने पर दुनिया का पलों में संहार करना तथा जीवों को कर्मानुसार फल देना है। जो जीवात्मा जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल देता है।

सुनकर औरंगजेब बहुत तिलमिला उठा, पर शिवाजी से लोहा लेना उसके लिए कठिन हो गया।

औरंगजेब ने दिलेर खाँ से मिलकर जसवंत सिंह को शिवाजी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। शिवाजी छिपकर रात को जसवंत सिंह से मिले। उन्होंने जसवंत से कहा, "आज आपको औरंगजेब के दरबार में सेनापति के रूप में देखकर समस्त आर्य जाति अपने आपको कलंकित अनुभव करती है। यदि आप आर्यों के उद्धार के लिए अपनी सेना लेकर यहाँ आते तो मैं आपकी ध्वजा उठाकर आगे-आगे चलता।"

जसवंत सिंह ने औरंगजेब से कहा, "शिवाजी तेईस दुर्ग आपको लौटा देंगे, केवल तैंतीस दुर्ग अपने पास रखेंगे। औरंगजेब ने इस प्रस्ताव को मान लिया और शिवाजी को दरबार में बुला भेजा। शिवाजी भी राजकीय दाँवपेंच समझ गए थे, तो भी वे 23 मई, 1666 को आगरे के दरबार में पहुँचे। वहाँ उनका उचित सम्मान न हुआ, बल्कि पिता और पुत्र को बंदी बना लिया गया। तब इन्होंने कुछ दिनों बाद बीमारी का बहाना बनाया। दान करने के बहाने मिठाइयों के टोकरे मँगवाए जाने लगे। एक दिन ऐसे ही दो टोकरों में बैठकर पिता-पुत्र पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर निकल गए और अपने राज्य में जा पहुँचे।

शिवाजी को मुसलमान शासकों से घृणा थी, क्योंकि वे हिंदू

जनता पर अत्याचार करते थे और उन्हें बलात् मुसलमान बनाते थे। सामान्य मुसलमानों के लिए उनके मन में कोई वैर नहीं था। उनकी अपनी सेना में भी बहुत से मुसलमान सैनिक थे।

शिवाजी नारी जाति का बड़ा सम्मान करते थे। उन्होंने शत्रुओं की नारियों के प्रति भी कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। यदि उनका कोई सैनिक किसी शत्रु सुंदरी का अपहरण करके लाता तो शिवाजी उसे आदरपूर्वक उसके आवास पर पहुँचा दिया करते थे और इस घृष्टता के लिए अपने सैनिकों को धिक्कारते और दंड देते थे।

शिवाजी विद्वानों और कवियों का आदर करते थे। उनके राज्याश्रित कवियों में महाकवि भूषण का नाम विशेष प्रसिद्ध है। महाकवि भूषण के अनुसार हिंदुन की चोटी, सिपाहियों की रोटी, कंधे में जनेऊ, गले में माला की रक्षा करने वाले शिवाजी श्रीराम के ही अवतार थे।

करके आनन्द को प्राप्त करता है। प्रकृति जड़ है। इसका भी अस्तित्व सदा रहता है। परन्तु यह न चेतन है और न इसमें आनन्द होता है।

4. प्रकृति किस काम आती है ?

प्रकृति जगत् बनाने का उपादान कारण (सामग्री) है। वह स्वयं न घटती है, न बढ़ती है। हाँ, इसका रूप बदलता रहता है। प्रकृति चेतन के द्वारा ही गति प्राप्त करती है, जिससे यह सारी सृष्टि बनती है। परमेश्वर जीवात्मा के लिए प्रकृति द्वारा ही सृष्टि-रचना करता है।

5. जीवात्मा क्या है ?

जीवात्मा अनेक हैं और वे चेनन तथा अनादि हैं। इनका कोई बनाने वाला नहीं है। जीवात्मा अल्पज्ञ और एक देशी है। जीवात्माओं का न जन्म होता है और न ये मरते हैं। कर्मफलों के भोग के लिए ईश्वर इन्हें शरीर देता है; यही जन्म कहलाता है परन्तु वस्तुतः जीवात्मा न जन्म लेता है और न मरता है।

6. जीवात्मा और प्रकृति को किसने बनाया है ?

ये अनादि हैं। इनका कोई बनाने वाला नहीं है। ईश्वर भी इन्हें नहीं बना सकता।

16

वैदिक प्रश्नोत्तरी

1. त्रैतवाद से क्या अभिप्राय है ?

यह एक वैदिक विचार धारा है, जिसके अनुसार तीन तत्व ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि माना जाता है। इसी सिद्धांत को त्रैतवाद कहते हैं।

2. अनादि किसे कहते हैं ?

जो तत्व हमेशा से चलें आ रहे हैं और जिनका न आरंभ है और न अन्त है अर्थात् ज़ो कभी नष्ट नहीं होते हैं, उन्हीं को अनादि कहते हैं।

3. ईश्वर, जीव और प्रकृति में क्या अन्तर है ?

ईश्वर एक है। उसका अस्तित्व सदा रहता है। यह चेतन और आनन्द-स्वरूप अर्थात् शारीरिक सुख-दुख से हमेशा परे है। जीवात्मा अनेक हैं। इनका सीमिति अस्तित्व भी हमेशा रहता है। जीवात्मा चेतन है परन्तु आनन्द स्वरूप नहीं। यह कर्मों के अनुसार सुख-दुख को भोगता है। यह ईश्वर को प्राप्त

11

आर्यसमाज के अनमोल रत्न
सरदार भगत सिंह

भारत माता की स्वतंत्रता के लिए हँसते-हँसते प्राणों का बलिदान करने वाले क्रांतिकारी शहीदों में सरदार भगत सिंह का नाम अग्रगण्य है। फाँसी पर झूलने से पहले भारत माँ की वेदी पर बलि होने की असीम प्रसन्नता से इस वीर का वजन बढ़ गया था। उसने 'भारत माता की जय' और 'इन्कलाब जिदाबाद' के नारे लगाते हुए फाँसी के फंदे को चूमा था।

भगत सिंह का जन्म संवत 1964 विक्रमी, अश्विन शुक्ल त्रयोदशी शनिवार को पंजाब के लायलपुर जिले के बंगा गाँव के एक आर्य परिवार में हुआ था। इनके पिता और चाचा सभी सच्चे देशभक्त थे। पिता किशनसिंह तो गाँधी जी के असहयोग आंदोलन में कई बार जेलयात्रा भी कर चुके थे। बालक के जन्म के समय भी वे बर्मा की माँडले जेल से छह मास का देश निर्वासन

भुगतकर घर लौटे थे। तभी बालक का नाम पंजाबी में 'भागाँ वाला' रखा गया, जिसका अर्थ था 'भाग्य वाला'। यह नाम ही बाद में भगतसिंह में बदल गया।

परिवार के सभी सदस्यों के धार्मिक होने के कारण गाँव में भगत सिंह को जन्म से ही धार्मिक संस्कार मिले थे। प्रारंभिक शिक्षा के समाप्त होने के बाद इन्हें डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में पढ़ने के लिए भेजा गया। भगत सिंह और उसके भाई जगत सिंह दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार लाहौर में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित लोकनाथ तर्कवाचस्पति द्वारा किया गया था। भगत सिंह के दादा अर्जुन सिंह इन पंडित जी के घनिष्ठ मित्र थे। उन्हीं की प्रेरणा से दोनों भाईयों का यज्ञोपवीत संस्कार उन्हीं के करकमलों द्वारा कराया गया था।

यज्ञोपवीत के इस अवसर पर अर्जुन सिंह जी ने यज्ञवेदी पर अपने संकल्प की घोषणा इन शब्दों में की थी–'मैं अपने इन दोनों बच्चों को इस यज्ञवेदी पर खड़े होकर देश सेवा के महान् यज्ञ के लिए समर्पित करता हूँ।'

भगत सिंह बचपन से ही उत्साही, परिश्रमी और आज्ञाकारी विद्यार्थी थे। वे शिक्षा के साथ-साथ सामाजिक कार्यों में भी बड़े जोश से भाग लिया करते थे। लाहौर आने पर वे आर्यसमाज के साप्ताहिक और वार्षिक अधिवेशनों में बढ़चढ़ कर भाग लिया

२७- **ओं अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।**

अर्थः हे भगवन् ! अंतरिक्ष लोक हमारे लिए निर्भयता को उत्पन्न करे। ये दोनों विद्युत् और पृथ्वी निर्भय करें पीछे से भय न हो। आगे से भय न हो। ऊँचे और नीचे कहीं भी हमको भय न हो।

२८- **ओं अभयं मित्रादभयमित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।**

अथर्व० का० १६ सू० १५ मं० ५, ६।।

अर्थः हे जगत्पते ! हमें मित्र से भय न हो। शत्रु से भय न हो। जाने हुए पदार्थ से भय न हो। न जाने हुए पदार्थ से भय न हो। हमें रात्रि में भय न हो। दिन में भय न हो सब दिशाओं में मेरे मित्र हों।

।। इति शांतिकरणम् ।।

२४- ओं यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थः हे अखिलोत्पादक ! जिस शुद्ध मन में ऋग्वेद और सामवेद तथा जिसमें यजुर्वेद रथ की नाभि पहिए के बीच काष्ठ में अरा जैसे स्थित है और जिसमें प्राणियों का समग्र ज्ञान सूत में गूँथी मणियों के समान संबद्ध है, वह मेरा मन वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार रूप संकल्प वाला हो।

२५- ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यजु० ३४ । १—६ ।।

अर्थः जो मन मनुष्यों को अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे अतिशय करके ले जाता है, जो मन अच्छा सारथि छूट चुके तथा वेग वाले घोड़े को जैसे वश में रखता है, मनुष्यों को नियम में रखता है और जो स्थित है, रहित है, अतिशय सरल है, वह मेरा मन संकल्प वाला हो।

२६- ओं स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शंꣳ राजन्नोषधीभ्यः।।

अर्थः हे सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! प्रसिद्ध आप हमारे गौ वादि दूध देने वाले पशुओं के लिए सुखकारक हों। मनुष्य मात्र के लिए शांति देने वाले हों। घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए सुखकारक हों। गेहूँ आदि ओषधियों के लिए हमें शांति दीजिए।

करते थे। आर्यसमाज अनारकली के वार्षिक उत्सव के समय नगर कीर्तन में नवयुवकों का नेतृत्व भगत सिंह ही किया करते थे। वे बड़ी मस्ती से दयानंद और आर्यसमाज के बारे में भजन गाते थे। वाद-विवाद में भी वे बड़े उत्साह से भाग लेते थे।

सन् 1921 में महात्मा गाँधी ने देश की स्वतंत्रता के लिए असहयोग आंदोलन शुरू किया। भगत सिंह उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। वह स्कूल की पढ़ाई छोड़कर अपने साथियों के साथ इस आंदोलन में कूद पड़े।

उन्होंने लाहौर में अपने मित्रों के साथ मिलकर 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की। कुछ देशभक्त नौजवानों ने गाँधी जी द्वारा 'चौरी चौरा आंदोलन' स्थगित किए जाने के विरोध में गुप्त रूप से हिंसक हलचल द्वारा स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का निश्चय किया। धीरे-धीरे बहुत से युवक इसमें शामिल हो गए। इस सभा का नेतृत्व भी भगत सिंह ने किया।

इस बीच भगत सिंह कानपुर में प्रसिद्ध क्रांतिकारी बटुकेश्वर दत्त से मिले और फिर दिल्ली के 'दैनिक अर्जुन' में काम करने लगे। काम के साथ ही वे अपने क्रांतिकारी कार्यों में भी जोश के साथ भाग लेते रहे।

भगत सिंह का रहन-सहन बड़ा सादा था। खादी की पोशाक, कुरता-पायजामा, सलवार या धोती, सिर पर ढीली पगड़ी, यही

भगत सिंह की वेशभूषा थी। वे बड़े अध्ययनशील थे। कार्य से जब भी खाली समय मिलता, तब ही वे क्रांतिकारी साहित्य पढ़ने में लग जाते थे।

आठ मार्च सन् 1921 की बात है दिल्ली असेंबली में जब अधिवेशन चल रहा था तो उसमें दो बम फूटे। यह करामात सरदार भगत सिंह और उनके साथी बटुकेश्वर दत्त ने की थी। लोग चौकन्ने हो गए। भवन धड़ाके से गूँज उठा। फिर लाहौर में इन पर अंग्रेजी राज के विरुद्ध षडयंत्र का अभियोग चला। अदालत के कटघरे में भगत सिंह 'इन्कलाब जिंदाबाद' के नारे के साथ दहाड़ उठा। इसी अभियोग के अधीन 23 मार्च 1931 को भारत माँ के अनोखे सपूत, देश के नौनिहाल भगत सिंह को फाँसी हुई।

प्रकाशक चक्षुरादि इंद्रियों का प्रकाश करने वाला, अकेला जागने वाले का अधिकतर दूर-दूर भागता है और वह सोते हुए को उसी प्रकार प्राप्त होता है, वह मेरा मन अच्छे-अच्छे विचारों वाला हो।

२१- ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थः हे जगत्पते ! जिस मन से सत्कर्मनिष्ठ मन को दमन करने वाले बुद्धिमान् लोग अग्निहोत्रादि कार्यों में और वैज्ञानिक और युद्धादि व्यवहारों में इष्ट कर्मों को करते हैं। और जो अद्भुत् प्राणि-मात्र के भीतर मिला हुआ है, वह मेरा मन श्रेष्ठ संकल्प वाला हो।

२२- ओं यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थः हे प्रभो ! जो बुद्धि का उत्पादक और स्मृति का साधन धैर्यस्वरूप और मनुष्यों के भीतर नाशरहित प्रकाशस्वरूप है, जिसके बिना कोई भी काम नहीं किया जाता, वह मेरा मन शुद्ध विचार वाला हो।

२३-ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थः हे सर्वेश्वर ! जिस नाशरहित और जिससे भूत, वर्तमान, भविष्य यह सब जाना जाता है और जिसमें सात होता हों ऐसा विस्तृत अग्निष्टोमादि यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला हो।

१८- ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षॐ शांतिः पृथिवी शांतिरापः शांतिरोषधयः शांतिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वॐशांतिः शांतिरेव शान्तिः सा मा शांतिरेधि।।

अर्थः हे परमेश्वर ! प्रकाशयुक्त सूर्यादि सूर्य और पृथ्वी के बीच का लोक, भूमि, जल, सोमलता आदि औषधियाँ, वनस्पति, वट आदि वृक्ष, सब विद्वान् लोग, वेद सब वस्तु शांति-सुखकारी निरुपद्रव हों। शांति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मंत्र में अन्वय है। शांति भी सुखदायिनी हो और वह शांति मुझको प्राप्त हो।

१६- ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतॐशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

यजु० ।३६ ।८,१०—१२,१७,२४।।

अर्थः हे सूर्यवत् परमेश्वर ! आप विद्वानों के हितकारी शुद्ध नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले अनादि काल से अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं, उस आपको हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक हम जीएँ, सौ वर्ष तक सद्शास्त्रों को सुनें। सौ वर्ष पर्यंत पढ़ाएँ और उपदेश करें और सौ वर्ष तक दीनतारहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीएँ, सुनें और अदीन रहें।

२०- ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

अर्थः हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जो दिव्य प्रकाशयुक्त दूर-दूर जाने वाला व पदार्थों को ग्रहण करने वाला विषयों के

12

मांस भक्षण निषेध

1. अण्डा -

अण्डा खाने की प्रथा अधिक प्राचीन नहीं है। "अभी चन्द वर्षों से ही अण्डा अधिक लोकप्रिय हो गया है किन्तु कष्ट होता है कि कुछ शाकाहारी भी अण्डे को शाकाहार समझकर खाते हैं तथा उनका तर्क होता है कि अण्डे में जीव नहीं होता । अतः वह शाकाहार की श्रेणी में आता है – जबकि अण्डा 100 प्रतिशत मांस है क्योंकि यह जानदार मां के पेट से उसी तरह उत्पन्न होता है जैसे कि अन्य जानदार प्राणी। यह सर्वमान्य है कि नर-मादा के बीज में जीवन होता है जिससे सन्तान को जीवन मिलता है अतः अण्डा उसी प्रकार जानदार है जैसे कि मां के गर्भ में शुरू के महीनों में मनुष्य के बच्चे का पहला रूप (भ्रूण)। अतः अण्डा खाने से जीव हत्या होती है।

मुर्गी सब प्रकार के गन्दे-गन्दे पदार्थ, रोगियों के थूक, बलगम, जूठन, मल-मूत्र, गले-सड़े पदार्थ, कुलबुलाते नालियों के कीड़े और कीटाणु खाती है अतः ऐसे गंदे विषैले आहार से निर्मित मुर्गी का अण्डा भी निश्चित रूप से विषैला-गंदा कई रोगों का कारण होता है। अण्डे के इस विष का असर मनुष्य पर धीरे-धीरे होता है। डाक्टरों के अनुसंधान से भी अण्डे की जर्दी में कौलस्ट नाम का चिकना मादक रस (अल्कोहल) होता है यह जिगर में जमा होते-होते खून की नस-नाडियों में जख्म और तनाव पैदा कर देता है। इसके प्रयोग से हृदय, गुर्दे और पित्ताशय में ब्लडपेशर, पथरी

आदि रोग पैदा हो जाते हैं। अण्डों में नाइट्रोजन, फासफोरिक एसिड और चर्बी अधिक मात्रा में होने से वे शरीर में तेजाबी रस बढ़ाकर रोग उत्पन्न कर देते हैं।

शरीर के स्वस्थ और दीर्घायु होने के लिये सबसे अधिक उपयोगी फल व हरी सब्जियां हैं। बंदर, हाथी, घोड़ा, गेंडा केवल शाकाहार द्वारा ही अपार शक्ति प्राप्त किये हुए हैं। फिर मनुष्य कैसे वंचित रह सकता है।

2. मांसाहार

मांस मनुष्य का भोजन नहीं है। मांस खाना मनुष्य के शरीर, स्वभाव के तो विरूद्ध है ही, डाक्टरों की राय में मांस खाना हानिकारक है। साथ ही शास्त्रों के अनुसार तो मांसाहार घोर पाप है।

1. मांस मनुष्य का स्वाभाविक भोजन नहीं है। इसमें प्रमाण यह है कि मनुष्य का बच्चा जन्म से ही मांस नहीं खाता। दूसरे समस्त मनुष्य जाति मांस नहीं खाती जबकि मांसाहारी प्राणियों शेर, भेड़िया आदि की समस्त जाति मांस खाती हैं तथा वे जन्म से ही मांस खाना सीख लेते हैं। मनुष्य के शरीर की रचना भी ऐसी है कि वह शाकाहारी प्राणी सिद्ध होता है न कि मांसाहारी। मांसाहारी पशुओं के दांत तथा नाखून बहुत तेज होते हैं जो कि मांस को फाड़ने के काम आते हैं जबकि मनुष्य के दांत तथा नाखून बन्दर आदि शाकाहारी प्राणियों की तरह बने हैं। मनुष्य की जीभ भी शाकाहारी पशुओं की भांति समतल होती है जबकि मांसाहारी पशुओं की जीभ बिल्कुल खुरदरी होती है। मनुष्य के पेट की आंतें मांसाहार के अनुकूल नहीं है।

2. डाक्टरों की राय में भी मांसाहार मनुष्य के लिए हानिकारक है। मांस खाने से मिरगी, पेशाब की बीमारी, आंतों तथा दिल की

१५- ओं शं नो वातः पवताꣳशं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रद देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु।।

अर्थः हे परमेश्वर ! जैसे पवन हमारे लिए सुखकारी चले, सूर्य हमारे लिए सुखकारी तपे। अत्यंत शब्द करता हुआ उत्तम गुणयुक्त विद्युतरूप अग्नि हमारे लिए कल्याणकारी हो और मेघ, हमारे लिए भली प्रकार वर्षा करें।

१६- ओं अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शँ योः।।

अर्थः हे परमेश्वर ! रक्षा आदि के साथ सुख की प्रेरणा के लिए हमारे अर्थ दिन सुखकारी हों, रातें कल्याण के प्रति हमको धारण करें। बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि हमारे लिए सुखकारी हों, जिनसे ग्रहण करने योग्य सुख प्राप्त हुआ वे विद्युत और जल हमारे लिए सुखकारी हों, अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में विद्युत और पृथ्वी हमारे लिए सुखकारी हों, बिजली और औषधियाँ सुखकारिणी हों।

१७- ओं शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शँयोरभि स्त्रवन्तु नः।।

अर्थः हे जगदीश्वर ! इष्ट सुख की सिद्धि के लिए पीने के अर्थ दिव्य उत्तम जल हमको सुखकारी हो और वे हमारे लिए सुख की वृष्टि सब ओर से करें।

१२- ओं शं नः सत्यस्य पतयो भवंतु शं नो अर्वंतः शमु सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु।।

अर्थः सत्य भाषणादि व्यवहार हमारे लिए सुखकारी हों, उत्तम हों हमारे लिए सुखद हों। गौएँ शांति के लिए हों। श्रेष्ठ बुद्धि वाले धर्म अच्छे कामों में हाथ देने वाले हमारे लिए सुखद हों। हवनादि सत्कर्मों में माता-पिता आदि हमारे लिए सुखकारक हों।

१३- ओं शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपानर्पोत्पेरूरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देव गोपा।।

ऋ० ७।३५।१–१३।।

अर्थः जगत्‌रूप पाद वाला अर्थात् जिसके अंश में सब जगत् है वह अनंतस्वरूप अजन्मा ईश्वर हमारे कल्याण के लिए हो। अंतरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ हमारे कल्याण के लिए हो। सागर सुखकारी हो। जलों की नौका हमको सुखपूर्वक पार लगाने वाली हो। देव रक्षक है, जिसमें ऐसा अंतरिक्ष स्थल हमको सुखकारक हो।

१४- ओं इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।

अर्थः हे जगदीश्वर ! जो आप बिजली के तुल्य संसार के बीच प्रकाशमान हैं, उन आपकी कृपा से हमारे पुत्रादि के लिए सुख हो और हमारे गौ आदि के लिए सुख हो।

कमजोरी उत्पन्न होती है। मांसाहारी मनुष्य भागने-दौड़ने तथा अन्य कार्य करने में शाकाहारी मनुष्य की अपेक्षा शीघ्र थक जाता है। लगातार मास-भक्षण से मनुष्य का जिगर खराब हो जाता है जिससे हमारे हाजमे की पूरी प्रक्रिया बिगड़ जाती है। इंग्लैंड के प्रसिद्ध डाक्टर हेग ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि 'मांस से हमारे शरीर में यूरिक एसिड बहुत बनता है जिससे अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। मांस खून को मैला कर देता है इसलिए शरीर के अन्दर बीमारी का सामना करने की शक्ति नहीं रहती। फ्रांस के सुप्रसिद्ध डाक्टर लूकस के अनुसार मांसाहारी मनुष्य की आंतों में फोड़ा हो जाता है।

मांसाहारी प्राणी वीर भी नहीं होता। शेर को जंगल का राजा कहा जाता है। वह मांस पर ही निर्भर रहता है किन्तु शेर के स्वभाव में वीरता नहीं है। डा. लिविंग्स्टन के अनुसार शेर का स्वभाव नीच तथा कायरता पूर्ण होता है। क्योंकि वह चोरों की तरह छिपकर पीछे से हमला करता है। सामने की टक्कर में तो उसे हाथी, सूअर, गाए तथा कुत्ते तक भी चीर डालते हैं। इसी प्रकार मांसाहारी मनुष्य भी वीर नहीं होता।

3. धर्मशास्त्रों के अनुसार तो मांसाहार घोर पाप है। दुनिया का कोई भी धर्मशास्त्र मांसाहार की आज्ञा नहीं देता। आर्यों के धर्मग्रंथ वेद तथा अन्य शास्त्रों में तो मासाहार को घोर पाप कहा गया है। मांसाहारी को राक्षस, असुर कहा गया है। मांसाहारी व्यक्ति में कभी सात्विक भाव जाग ही नहीं सकते। उसका स्वभाव हिंसक एवं तामसी हो जाता है। मनुस्मृति में तो न केवल मांस खाने की निन्दा की गई है अपितु मांस बेचने वाला, परोसने वाला, खाने वाला, अनुमति देने वाला, देखने वाला इस प्रकार के व्यक्तियों को समान रूप से पापी माना है।

इस प्रकार हमने देखा कि मांस न तो मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है और न ही मांसाहार मनुष्य के शरीर के भी अनुकूल है। डाक्टरों एवं शास्त्रों की राय में भी मांस-भक्षण अनुचित एवं घोर पाप है। इसलिए हमको इस बुराई से अवश्य बचना चाहिए।

दुनिया के अधिकांश विचारक, महापुरुष मांस-भक्षण नहीं करते थे। यहां तक कि कई लोगों ने मृत्यु को स्वीकार किया किन्तु मांस-भक्षण नहीं किया। विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ८३ वर्ष तक जीवित रहे तथा पूरी आयु मांस नहीं खाया। अन्तिम दिनों में रोगी होने पर महान् विद्वान जार्ज बनार्ड शा से ठीक होने के लिए जब मांस भक्षण का आग्रह किया तो उन्होंने कहा कि "मैं मांस-भक्षण की अपेक्षा मौत को अच्छा समझता हूं।" भारतीय ऋषि-मुनि जो कि ज्ञान-विज्ञान में विश्व गुरु थे, मांस-भक्षण कभी करते ही न थे। इसीलिए वे इतने महान् बने।

डॉ. रघुवीर वेदालकार

९- ओं शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।

अर्थः सत्कर्मों के साथ विदुषी माताएँ हमारे लिए शांति के लिए हों। शोभन विचार वाले मितभाषी विद्वान् लोग हमारे लिए शांति के लिए हों। व्यापक ईश्वर हमको शांतिदायक हो। पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार हमको शांति के लिए ही हो। अंतरिक्ष, वा-जल, वा-भवितव्य हमको सुखकारक हो। पवन शांति ही के लिए हो।

१०- ओं शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः।।

अर्थः सर्वोत्पादक परमेश्वर रक्षा करता हुआ हमारे लिए सुखकारक हो, विशेष दीप्तिवाली प्रभात बेलाएँ हमारे लिए सुख कारक हों। मेघ हमारे और संसार के लिए कल्याणकारी हो। जगत्रूपी क्षेत्र का स्वामी सबको सुख देने वाला हमारे लिए शांतिकारी हो।

११- ओं शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शंनो अप्याः।।

अर्थः दिव्यगुणयुक्त समस्त विद्वान् हमारे लिए सुख देने वाले हों। विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी उत्तम बुद्धियों के साथ सुखकारिणी हो। यज्ञ के सेवक व आत्मदर्शक शांतिदायक हों। विद्या धनादि के दान का सेवन करने वाले शांति के लिए ही हों। पृथ्वी के सुंदर पदार्थ हमारे लिए सुखद हों। जल में पैदा होने वाले हमारे लिए सुखद हों।

६- ओं शंन इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शंनो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु।।

अर्थः दिव्यगुणयुक्त सूर्य धनादि पदार्थों के साथ हमारे लिए सुखकारक हो। संवत्सरीय मासों के साथ शोभन प्रशंसा वाला जलसमुदाय सुखकारक हो शांतस्वरूप परमात्मा दुष्टों को दंड देने वाले अपने गुणों के साथ हमारे लिए सुख देने वाला हो, विवेचक विद्वान् वाणियों से इस संसार में सुखदायक उपदेशों को हमारे लिये सुनाएँ।

७- ओं शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः।।

अर्थः हमारे लिए चंद्रमा सुखकारक हो। हमारे लिए अन्नादि रूप तत्त्व शांतिदायक हो शुभ कार्यों के साधन भूत प्रस्तर–पत्थर हमको सुख देने वाले हों। सब प्रकार के यज्ञ शांति के लिए ही हों। यज्ञ स्तंभों के परिमाण हमको सुखदायक हों हमको औषधियाँ सुख देने वाली हों। यज्ञ की वेदि कुंडादिक शांति के लिए हों।

८- ओं शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्त्रः प्रदिशो भवन्तु शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।

अर्थः अत्यंत तेजस्वी सूर्य हमारे लिए सुखपूर्वक उदय को प्राप्त हो। चारों पूर्वादि बड़ी दिशाएँ वा ऐशानी आदि प्रदिशाएँ हमारे लिए सुख करने वाली हों। हमारे लिए पर्वत स्थिर और सुखकारक हों। और हमारे लिए नदियाँ व समुद्र शांतिदायक हों। जल मात्र व प्राण शांति के लिए ही हों।

13

बोध कथा

मूर्ति पूजा

शिवरात्रि के अवसर पर शिव की मूर्ति पर चूहों को क्रीड़ा करते एवं चढ़ाए गए नैवेद्य को खाते देखकर किशोर मूलशंकर के हृदय में सच्चे शिव की खोज की ललक जाग उठी। साथ ही उन्हें इस सत्य की प्रतीति भी हो गई कि घट-घट में हरेक प्राणी में व्याप्त भगवान की कोई मूर्ति हो ही नहीं सकती। उन्हें उस समय राजा-महाराजाओं और कई सन्तों-महन्तों ने मूर्ति पूजा का विरोध न करने के लिए समझाया, परन्तु एक बार जब उन्हें यह तथ्य सिद्धान्त रूप में समझ आ गया, तब वह किसी भी कीमत पर उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए।

एक दिन एक हट्टा-कट्टा बलवान् उद्दण्ड व्यक्ति मोटा लट्ठ उठाए झूमता हुआ स्वामी दयानन्द के पास पहुंचकर बोला – "बाबा, क्या तुम मूर्ति को ईश्वर नहीं मानते?" स्वामी जी ने बड़ी गंभीरता से कहा – "अच्छा तो तुम बताओ, ईश्वर का स्वरूप कैसा है?" वह उद्दण्ड व्यक्ति बोला –"ईश्वर सच्चिदानन्द है, सर्वशक्तिमान है, भक्तों पर कृपा करता है, दयालु है, और सर्वत्र परिपूर्ण।" स्वामी जी ने कहा – "तुम्हारी समझ ठीक है, तुमने ईश्वर के गुण बताए हैं, परन्तु अब बतलाओं कि ईश्वर के जो गुण

तुमने बतलाए हैं, उन्हें मन्दिर की मूर्ति से मिलाओ। यदि वे मिल गए तो मैं तुम्हारा साथी बन जाऊंगा, यदि नहीं मिले तो तुम्हें सच्चाई माननी चाहिए। स्वामी जी के इस समझाने के ढंग से उद्दण्ड व्यक्ति का दिल भी हिल गया, वह लट्ठ फेंककर उनके चरणों में गिर पड़ा।

एक बार मुम्बई में मूर्ति पूजा का प्रबल खण्डन करते हुए स्वामी जी का प्रचण्ड व्याख्यान हुआ। स्वामीजी ने कहा –"जड़ मूर्ति को ईश्वर मानोगे तो ईश्वर भी जड़ सिद्ध होगा।" इस पर एक श्रोता ने कहा – "भावना से मूर्ति में ईश्वर की प्रतिष्ठा हो जायेगी।" स्वामी जी ने हंसकर उत्तर दिया – "काष्ठ खाण्ड लाठी में इक्षु दण्ड (गन्ने) की और लोष्ठ (मिट्टी के ढेले) में मिश्री की भावना पर उन्हें मुंह में डाल लो।" जिज्ञासु ने कहा –"ऐसा तो नहीं होता।" स्वामी जी ने उत्तर दिया – "मृगतृष्णा में मृग (हरिण) जल की बहुतेरी भावना करता है, परन्तु उसकी प्यास नहीं बुझती। विश्वास, भावना और कल्पना के साथ सत्य का होना आवश्यक है।"

३- ओं शंनो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शंन उरूची भवतु स्वधाभिः। शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु।।

अर्थः हमको सब पोषक वस्तु शांतिकारक हो धारक सब वस्तु शांति के लिए ही हमारे लिए हो। हमारे लिए पृथ्वी अन्नादि पदार्थों से कल्याणकारक हो। बड़ी अंतरिक्षसहित पृथ्वी व प्रकाशसहित अंतरिक्ष शांति देने वाली हो। मेघ हमारे लिये सुखकारक हों और हमारे लिए विद्वानों के शोभन आह्वान सुखकारक हों।

४- ओं शंनो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शंनो मित्रावरुणावश्विना शम्। शंनःसुकृतां सुकृतानि सन्तु शंन इषिरो अभि वातु वातः।।

अर्थः प्रकाश ही है अनीक मुख व सेना की नाईं, जिसका ऐसा हमको अग्नि सुखकारक प्राण और उदान वायु हमको सुखकारक उपदेशक और अध्यापक, सुख पहुँचाने वाले धर्मात्माओं के धर्माचरण हमको सुखकारक हों। उपदेशक और अध्यापक सुख पहुँचाने वाले हों, धर्मात्माओं के धर्माचरण हमको सुख देने वाले हों, हमारे लिए गमनशील वायु सुख देता हुआ बहे।

५- ओं शंनो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।

अर्थः विद्युत् और भूमि पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिसमें हो ऐसी क्रिया में हमारे लिए शांतिदायक हों। अंतरिक्षलोक ज्ञान संपत्ति के लिए हमारे लिए शांतिदायक हो। ओषधियाँ और वृक्ष हमारे लिए सुखकारक हों रजोलोक का पति जयशील महापुरुष हमारे लिए सुख देने वाला हो।

15

अथ शांतिप्रकरणम्

१- ओं शं न इन्द्राग्नीभवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रात हव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाज सातौ।।

अर्थः विद्युत और अग्नि रक्षणादि द्वारा हमारे लिए सुखकारक हों। ग्रहणयोग्य वस्तु जिन्होंने दी है, ऐसे बिजली और जल हमारे लिए सुखकारक हों। विद्युत और औषधिगण ऐश्वर्य के लिए और शांति हेतुक और विषय हेतुक सुख के लिए प्रसन्नतादायक हों। विद्युत और वायु हमारे लिए युद्ध में व अन्न लाभ विषय में कल्याणकारक हों।

२- ओं शंनो भगः शमु नः शंसो अस्तु शंनः पुरन्धिः शमु संतु रायः। शंनः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शंनो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।

अर्थः हमारे लिए ऐश्वर्य सुखदायक हो और हमारे लिए प्रशंसा शांति के लिए ही हो। हमारे लिए बहुत बुद्धि सुखकारक हो धन शांति के लिए ही हों। अच्छे नियम से युक्त सत्य का कथन हमको सुखकारक हो। हमारे लिए बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध न्यायाधीश सुख देने वाला हो।

14

महापुरुषों के जीवन से सीखें
अहिंसा

किसी को मारने या सताने की इच्छा हिंसा कहलाती है और ऐसी इच्छा का न होना अहिंसा कहलाती है। हिंसा हत्या को जन्म देती है। हत्या करना पाप है। हिंसा के बिना हत्या नहीं हो सकती इसलिए अहिंसा को परम धर्म कहते हैं–**अहिंसा परमो धर्मः।**

महात्मा गाँधी व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अहिंसा और सत्य पर बड़ा बल देते थे। उन्होंने स्वाधीनता का संग्राम भी इन दो हथियारों से ही लड़ा। यदि सत्याग्रह से काम न चले तो असहयोग करो। बुरे का साथ देना छोड़ दो। यदि फिर भी सफलता न मिले तो अवज्ञा करो, आज्ञा न मानो। जिसके साथ संघर्ष है, उनसे संघर्ष करो, किंतु किसी भी दशा में अहिंसा का साथ मत छोड़ो।

अहिंसा के तीन रूप हैं जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। किसी को अपने शरीर से कष्ट पहुँचाने की इच्छा न करना शारीरिक अहिंसा है। वाणी से कष्ट पहुँचाने की इच्छा न करना वाचिक अहिंसा है और किसी का मन से भी बुरा न चाहना मानसिक अहिंसा है।

अतः हमें मनसा, वाचा, कर्मणा तीनों ही रूपों में हिंसा करने से बचना चाहिए।

हमारा मन एक ऐसी चीज़ है, जिसके तार दूसरे लोगों के साथ, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों तक के मनों के तार के साथ जुड़ा रहता है। जब हम किसी के लिए कुछ बुरा सोचते हैं तो उनके मन में भी हमारे लिए दुर्भाव पैदा होने लगते हैं।यदि हमारा मन किसी के लिए सद्भावयुक्त है तो उसके मन में हमारे प्रति किसी कारण, कोई द्वेष-भाव भी हो तो वह अपने आप ही समाप्त हो जाता है और वह भी हमारे प्रति सद्भाव रखने लगता है। नफरत और प्यार में, घृणा और प्रेम में विजय सदा प्यार या प्रेम की ही होती है। वन में तपस्या करने वाले ऋषि-मुनियों के आश्रम में सिंह आदि पशु उसी प्रकार आचरण करते थे, जैसे, हमारे घरों में पालतू पशु करते हैं।

महात्मा आनंद स्वामी ने इस संबंध में अपने जीवन की एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है –

सन्यासी बनने के बाद उनके मन में एक लगन लगी रही कि जगद्गुरु स्वामी दयानंद ने जीवन में जिन-जिन स्थानों पर तप किया, उन्हें देखें। उत्तर काशी में एक बहुत वृद्ध साधु ने उन्हें बताया कि स्वामी दयानन्द मुल्ला चट्टी भी गए थे। सत्ताइस किलोमीटर ऊपर पहुँचने के बाद वहाँ इतना घना जंगल है कि

उसमें दिन के समय भी मार्ग दिखाई नहीं देता। वहाँ तीन घंटे पश्चात् उन्हें एक साधु के दर्शन हुए थे। ये उन गंगागिरी के शिष्य थे जो स्वामी दयानंद के काल में हुए थे। वे आनंद स्वामी को कुटिया पर ले गए और वह शिला दिखाई, जिस पर बैठकर स्वामी दयानंद ध्यान लगाते थे। आनंद स्वामी ने भी उस पर बैठकर ध्यान लगाया! ध्यान के पश्चात् आँखें खोलने पर उन्हें एक विशाल शेर अपनी ओर आता दिखाई दिया। साधु तो अपनी कुटिया के अन्दर बैठे थे। इन्होंने आवाज देकर कहा, "यह सिंह आ गया है।" वे बोले, "घबराने की आवश्यकता नहीं। यह सिंह तुम्हें कुछ नहीं कहेगा।" आनंद स्वामी आधी आँख से सिंह की ओर देखते रहे। वह उन के पास से निकल कर उस साधु के पास चला गया। साधु ने उसकी पीठ सहलाई, उसके पाँव खुजाए, उसके सिर पर हाथ फेर, उसे प्यार किया और शेर चला गया। इसी साधु ने बताया कि दयानंद भी इसी प्रकार सिंहों से प्यार करते थे।

वास्तव में यदि हमारे मन में दूसरों को सताने की भावना न होकर प्यार की भावना है तो दूसरे के हृदय में भी इस भावना का संचार होता है। अहिंसा को इसलिए परम धर्म कहा गया है। अहिंसा से सब वैर, भय और आशंका दूर हो जाते हैं।